जश्न - ए - खमी

मालती

जश्न - ए - रूमी

मालती

Desk Top Publisher
P. K. CHHATPAR
Mob. 996 77 222 63

प्राक्कथन

जलालुद्दीन रूमी की कहानी मुझे तो भारत के चैतन्य महाप्रभु की कहनी जैसी लगती है । चैतन्य ज्ञानी,धार्मिक पंडित से भक्त बन गये तो रूमी ज्ञानी, धार्मिक गुरु से प्रेमी । दोनों ही अपने दोनों क्षेत्रों पंडिताई व भक्ति तथा गुरु व प्रेमी में, चरम शिखर पर पहुँच चुके थे। तभी इन दोनों में ही भक्त व भगवान एवं प्रेमी व प्रेमिका (प्रभु) का एकत्व (अद्वैत) देखा जाता है । प्रभु, प्रेमिका जो भी देते हैं – सुख–दुःख; भक्त व प्रेमी उसे प्रसाद मान कर ही गृहण करते हैं । प्रभु–प्रेमिका ने दिया – मुझको दिया इसका उत्सव मनाते हैं, उसे धन्यवाद देते हैं । अपनी मौज़ में प्रेम–पूरित हो विरह के, मिलन के, उपदेशनाओं के बोल बोलते जाते हैं, तभी मीरा भी, दरवेश भी, रूमी भी नाचते–गाते हैं । इसीलिये रूमी की कविताओं के सार–संग्रह को मैंने **जश्न–ए–रूमी** का नाम दे दिया है ।

मुझे अरबी–फारसी भाषा का ज्ञान नहीं है । इंग्लिश में रूमी की एक किताब हाथ लगी । पढ़ी – समझ नहीं आई । परे हटा दी । पर, मन को खला । फिर, कुछ दिन बाद उठाई । बीच–बीच में से कविताऐं पढ़ीं । कुछ समझ आईं, कुछ नहीं । पर, थोड़ा–थोड़ा मज़ा आने लगा । एक दिन सोचा – क्यों न इसका मज़ा अक्सर ले लूँ, इसको अपनी समझ के अनुसार, अपनी भाषा में लिख लूँ ? फिर, जब भी मन आयेगा पढ़ती रहूँगी । और तब एक–दो कविताओं का अनुवाद किया । कुछ संतोष हुआ । अपने मित्रों को दोनों – इंग्लिश व हिन्दी के अनुवाद पढ़ाये । सबने कहा – हिन्दी में पढ़कर अधिक समझ आ

रहा है । बस, फिर तो दिशा मिल गई । चार-छः अलग-अलग इंग्लिश के अनुवाद मित्रों से भी लिये और स्वयं खरीद भी लिये । चार-पाँच वर्षो में ये लगभग पाँच सौ छोटी-बड़ी कविताऐं या कि कहिये उनका सार लिख पाई हूँ । एक बुजुर्ग मित्र की सलाह पर जितना अब तक अनुवाद किया है, उसे किताब का रूप दे रही हूँ । शायद कुछ प्रेमी जनों को कुछ संतोष मिल पायेगा ।

मूल ग्रंथ से अनुवाद करें तो लेखक का मंतव्य शायद पूरा का पूरा आ सकता है, पर इस अनुवाद के बारे में, अनुवाद से अनुवाद के बारे में, ऐसा कहना धृष्टता होगी । अतः मैं इतना ही कहूँगी कि रूमी के लिखे को मैं अपनी बुद्धि के अनुसार जैसा समझ पाई, वैसा लिख दिया है । मुझे अच्छा लगता है, जब पढ़ते-पढ़ते मैं उन्हीं भावनाओं में खो जाती हूँ । मेरे जैसे जहाँ में और भी होंगे ही, यही सोच कर इस स्वांतः सुखाय लिखे को पुस्तक रूप दे दिया है।

अभी कुछ माह पहिले हिन्दी में अनुदित एक पुस्तक मिली 'जहान-ए-रूमी' । राजकुमार केसवानी ने कुछ कविताओं को अनुदित किया है । भावों का अच्छा बहाव है उनमें । एक ही बैठक में, पूरी पुस्तक पढ़ डाली । पढ़ कर अच्छा लगा, मज़ा आया, प्रेम की अटपटी भाषा का भी ।

हर लेखक की, कवि की अपनी ही शैली होती है । इस मेरी शैली में किसीको भाव समझ आये कि नहीं, यह तो पाठक गण ही बता पायेंगे । मेरी मौज़ उठी तो मैंने लिख डाला है । महीनों इच्छा नहीं हुई तो नहीं लिखती थी, लिखने की ललक उठती तो समय-असमय का

ख्याल ही नहीं रह जाता था, बस लिखे ही जाती थी ।

अरबी-फारसी के ज्ञाताओं, सूफी धर्म के पंडितों से मेरा नम्र निवेदन है, इसकी तुलना रूमी के लिखे से न करें । इसमें उनका लिखा हू ब हू न खोजें। कारण मैं पहले ही स्पष्ट कर चुकी हूँ । अतः कृपया इस पुस्तक को व्यर्थ वाद-विवाद कर, चर्चा का विषय न बनायें । एक और बात गुरु के प्रति रूमी के प्रेम व उसकी श्रद्धा का अर्थ भी अन्यथा न लगायें । बुद्धिजीवियों का आज का प्रमुख मनोरंजन ऐसी ही बातें हो गईं हैं । तभी रूमी ने ही कहा था -

'वाद-विवाद है नशा हमारा,
है शौक़ समस्या सुलझाना,
हर घटना, चरित्र की चीर-फाड़ करना ।'

धन्यवाद !

मालती

दिनांक १९ एप्रेल २०१२

सूफी धर्म

दुनियाँ के सभी धर्मों से निराला है – सूफी धर्म । यदि धर्म की संज्ञा देनी ही हो तो इसे 'प्यार का धर्म' कहना अधिक उपयुक्त होगा । धर्म शब्द से ही लगता है – प्रभु बड़ा है और हम छोटे हैं । अब वह हिंदुओं का ज्ञान, भक्ति, कर्म पर आधारित हो या ईसाईयों का सेवा करना हो, मुसलमानों और सिक्खों का लंगर इत्यादि हो । सब में समर्पण प्रमुख भाव है । पर सूफियों में ऊँच–नीच, छोटा–बड़ा है ही नहीं । वहाँ तो समस्तर पर मात्र प्रेम भाव है – प्रेमी और प्रेमिका का । और प्रेमिका कौन है ? हम नहीं, वो (प्रभु) । समर्पण दोनों में है – प्रेम में भी और भक्ति में भी । पर, भक्ति के समर्पण में सेवा भाव है – व्यक्ति दास है । और, सूफी के प्रेम के समर्पण में एक हो जाना है – मिलकर । इसकी कुछ झलक कभी–कभी कृष्ण और गोपियों के प्रेम में मिल जाती है । पर, साकार के प्रति प्रेम नहीं है – ये । निर्गुण, निराकार के प्रति प्रेम, कण–कण के प्रति हो ही जायेगा । कोई एक आलंबन नहीं होता – उसका । वसुधैव – कुटुंबकम् की भावना प्रधान हो जाती है क्योंकि प्रेम बंधी–बंधाई लीक पर नहीं चलता । कुछ माँगता भी नहीं, न अधिकार जताता है । चुपचाप जो आया कर लिया, जो मिल गया ले लिया, बिना शिकायत। प्रेमी की दुनियाँ और ही होती है – वहाँ झगड़े–फसाद भी नहीं हो सकते । क्योंकि कोई रीति–नीति, कर्मकांड, प्रेम की दुनियाँ में होते ही नहीं । कोई मोह–बंधन भी नहीं होता ।

सूफी धर्म को मानवता का धर्म कहना अतिशयोक्ति न होगा । इसमें ज़ोर केवल प्रेम पर है । प्रेम में स्व तो मर ही जाता है, और सारे

झगड़े अहम् (स्व) के कारण ही होते हैं। सामा (सूफी नृत्य) और चोगा (वस्त्र) को भी सूफियों की ही पहचान न मानें। सामा तो अपनी आत्मा को देख पाने के एक मार्ग के समान है और चोगा उस नृत्य में आसानी हो, उसके लिये है। कभी 'सामा' करके देखें, आप स्वयं समझ जायेंगे। एक ही स्थान पर खड़े होकर, अपनी नाभि को अपने ध्यान का केन्द्र बिन्दु बना लें। एक हाथ ऊपर को उठा हुआ प्रभु के प्रेम, आशीर्वाद को ग्रहण करता सा हो और दूसरा नीचे की ओर, उस प्रेम व आशीर्वाद को बहाता सा। यह भी ज़रूरी नहीं है। आप अपनी मौज से हाथों को रख सकते हैं। बस नाभि पर ध्यान रखते हुए, एक ही स्थान पर चक्कर लगाने हैं। ऐसा करने से आप विचारहीन होते जायेंगे। फिर तो बस आप माध्यम बन जाते हैं – प्रेम धार के – चारों तरफ से लेना और चारों तरफ बिखेरना। सारा वातावरण प्रेममय हो जाता है।

सत्य, प्रेम, करूणा, मुदिता, आदर, मैत्री, अनुग्रह–जीवन के ये इन्द्रधनुषी रंग सूफियों में इसलिये ही बखूबी देखने को मिल जाते हैं। रूमी की कविताओं में जहाँ–तहाँ ये ही रंग बिखरे हैं। ज्यों–ज्यों ये रंग चरम सीमा पर पहुँचते हैं, व्यक्ति मौन–दृष्टा बनता जाता है। विशेष दिखने–दिखाने पर सूफियों का ज़ोर नहीं है – वे तो साधारण से भी साधारण बने रहने पर ज़ोर देते हैं। रूमी साधारण ही हैं, इसीलिये अपने से लगते हैं, दोस्त लगते हैं। जनसाधारण के द्वन्द भरे जीवन को उनने भी जीया है, उसका ज्यों का त्यों विवरण देते हैं। द्वन्द से ऊपर उठने की सामान्य आकांक्षा भी हमारी तरह व्यक्त करते हैं। उसकी मुश्किलें बताते हैं, साथ ही सुलझाने का पथ भी बताते हैं। हमसफर बनकर राह की ठोकरों से बचाते हैं, सहलाते हैं। बिना अपना प्रभुत्व जताये,

अप्रत्यक्ष रूप से ज्ञान शक्ति भर देते हैं और तब अपनी ही राह अकेले चलने को छोड़ जाते हैं, कहीं दूर नहीं । क्योंकि हमें यही लगता रहता है कि वे यहाँ हैं ही; ढूँढ़ने की ज़रूरत ही नहीं है । गुरु–शिक्षकों को हर बात बार–बार समझानी पड़ती है, अलग–अलग तरीकों से, शब्दों में दुहरानी पड़ती है, क्योंकि वे जनसाधारण से बोल रहे होते हैं । रूमी ने भी अपनी बात बार–बार समझाई है । पाठक गण को, हमको समझने में आसानी हो तो मैंने कुछ विभाग कर दिये हैं । वे एक–दूसरे में मिल–जुल ज़रूर जाते हैं क्योंकि बात को घुमा–फिरा कर कहें तो भी बात तो एक ही है । आत्मा की खोज के राही को हर कदम पर मार्गदर्शन देने को रूमी खड़े हैं । हमारे चलने की ही देर है – मुझे तो ऐसा ही लगता है । पाठकगण से मेरा नम्र निवेदन है – शब्दों और तर्कों में न उलझें । भाव व सूक्ष्म विचार को पकड़ आगे बढ़ लें । यदि मन को लिखा हुआ रास न आए, मन न हिल पाये तो किताब को उठाकर परे रख दें । व्यर्थ विवेचना में न पड़ें ।

धन्यवाद !

मालती

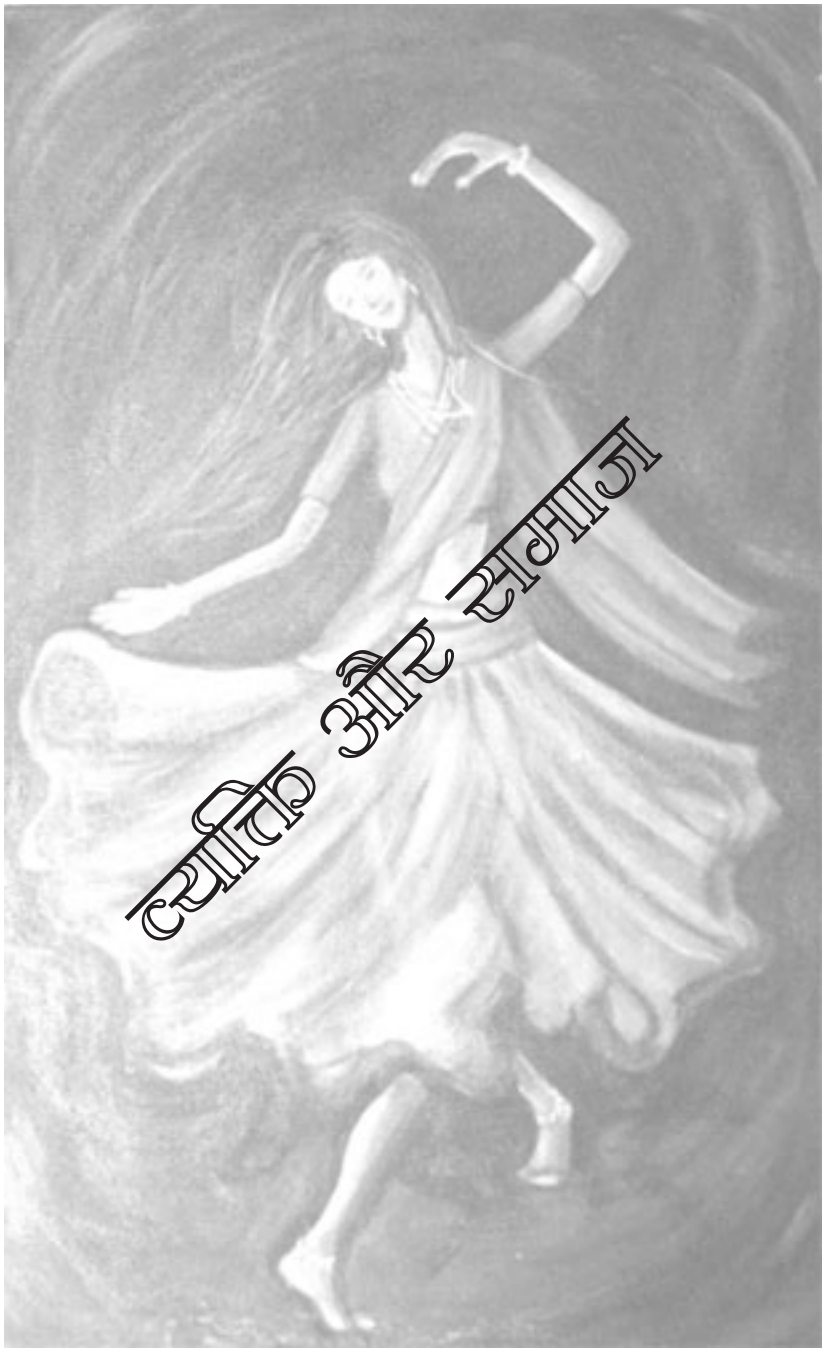
व्यक्ति और समाज

दुनियाँ है मेरी मातृभूमि,
सारे प्राणी हैं भाई,
है धर्म मेरा, करूणा औ प्रेम !

एक स्रोत परिवार हमारा,
एक अंग पीड़ा पाये तो;
तन समग्र ही आहें भरता ।
दूजों की पीड़ा से जो है उदासीन
वह इन्सां कहलाने के काबिल ना होता ।

क्या है दुनियाँ ?
निज के प्रति अचेतन रहना ?
तन, मन, धन औ जन की,
भौतिकता में खोना ?

वहशी, शैतानों से भ्रमित हो गया हूँ मैं,
दीपक जला, शहर में घूम बिताऊँ रातें;
इन्सां का दिखना इतना दुश्वार हुआ क्यों,
दिखें सभी, जैसे कि लगाये बैठे घातें,
इक-दूजे से जुड़े जुड़ायें मिलकर रह लें,
क्यों ये खाई-खंदक और बढ़ाये जायें ?

केवल ज्ञान से ही मतलब है
आत्मा को,
ना कि अरब या तुर्कों से ।

क्या होते अन्याय - न्याय ?
ग़लत जगह या सही जगह पर
रंग भर देना ?

पद, पैसे हित बनें जो धार्मिक,
है वह केवल पापाचार,
कहते धर्म जिसे सब कोई,
वह तो है केवल व्यापार ।

दूजे के प्रति, व्यवहार तुम्हारा,
निश्चित कर देता है,
तुम वैसा ही पाओगे ।

अरी ओ जिव्हा ।
तुम हो रस की अनंत भंडार,
दे भी सकतीं कड़वी मार,
शब्द निकलते जैसे बाण,
वापिस ना फिर भीतर जाँय;
सोच-समझ कर उन्हें उचारो,
हंसी-ख़ुशी ही सब पर वारो ।

भले लोगों का साथ तुम्हें भी भला बनाता,
संग दुष्टों का तुमको दुष्ट बनाकर रहता ।

मुक्त हस्त धन देकर कोई गौरव पाता,
पर, प्रेमी तो निज को ही, अर्पण कर देता ।
प्रभु कारण जो रोटी दी तो रोटी पाओ,
निज जीवन दो, बदले में, वो जीवन पाओ ।

दुनियाँ इक परिवार महत् है प्रभु का,
चींटी से गज, रज से पर्वत तक;
उसे ध्यान है सबका ।
सब ही मन की करें करायें,
तो कैसे परिवार चले;
इक बुजुर्ग की मान करें सब
नियत काम, सुख शांति रहे ।
दिल में दुःख-निराशा आये,
कारण जानो 'मैं' को ही;
मदद मुखिया की उसे हटाये ,
माँग लो, है कर्त्ता वो ही ।
तब विलग रहे ना कुछ, मैं जगमय
जग, मैं मय हो जायेगा;
'मैं' जाये जब दिल से तो वहँ,
शांतानंद भर जायेगा ।

कार्यारम्भ करने के पहले
उसका अन्त सोच लो;
पछताना ना पड़े अन्त में
दूर दृष्टि हिय रख लो ।

यदि तोड़ा उपवास तो कर सकते हो पश्चाताप,
कह 'बकवास', जो दिल तोड़ा तो बने न बिगड़ी बात।

ओ चमगादड़ !
अंधेरे में ना रहना हो तो,
ज्योति पुंज से दोस्ती कर लो ।
ईंच-ईंच उस ओर सरक कर,
लंगड़ाकर भी चलते रह कर;
पहुँच वहाँ, तुम स्वयं प्रकाश बन जाओगे ।

जग हँसता है, पर ध्यान रखो,
होती है हसीं, उसकी ही हँसी;
जो रो सकता है ।

वचन तोड़ते रहना तो है निरी मूर्खता,
प्रभुजन या तो वचन न देता या न तोड़ता ।
सब हैं प्रभु के बंदे, औ है सबसे उसका रिश्ता,
कयामत के दिन ऐसे भावों वाला ही बचता ।

बेटे वलाद को अंतिम उपदेश

है मेरा तुमको यह ही कहना -
अकेले हो या हो समूह में,
प्रभु प्रति पूरी श्रद्धा रखना;
कम ही बोलना, सोना, खाना,
क्रूर, पाप कर्मों से हटना ।
करना उपवास, सजग रहना,
भोगादि पंजों में ना फंसना;
दुर्व्यवहार जग का सह लेना,
मूर्ख, नीच संगत ना करना ।
धार्मिक, सज्जन के संग रहना,
गुण ही देखना औ दिखलाना;
प्राणी जग की सेवा करना,
चल इस पथ; पथदर्शी बनना ।

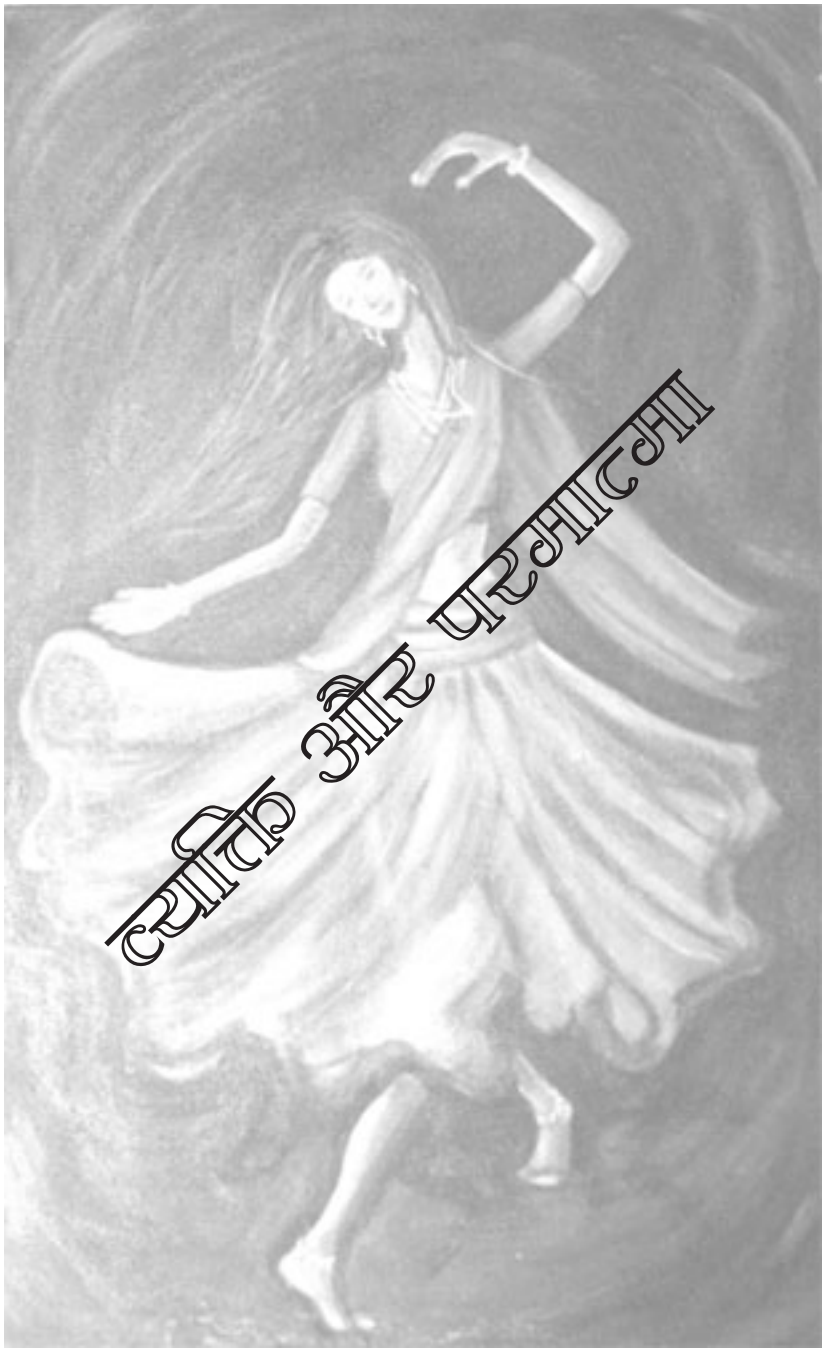

ज्योति और परमात्मा

अस्तित्व नहीं कुछ वास्तव में,
है केवल कल्पना मात्र ही,
वह, हम जैसा ।

विस्तृत फैला हो झूठ तो भी,
ना समाधान कर पाता,
पर, सच का इक लघु कण भी,
दिल को आकर्षित करता,
सुकून उसीसे मिलता ।

प्रेम को ना जाना-पहचाना,
पीड़ा है यह आत्मा की,
जीवन जल पिये बिना तन जाये,
यह चिंता है प्राणों की ।

'है क्या प्यार' किसी ने पूछा,
'खो दोगे जब निज को मुझमें,
जैसे कि बूंद सागर में,
तब ही जान सकोगे'
उत्तर दिया प्रभु ने ।

अंतस के सत्य का है महत्त्व,
सब रीति-नीति तुलनात्मक व्यर्थ;
जाति, रूप, गुण, वाणी, कर्म मानी ना रखते ।

आलोचक ना बन प्रेमी,
दर्पण बन जाते;
मिले सहारा इक-दूजे को,
पथ आसां हो जाते ।
बन खरगोश एक ले जाता,
दूजे को दरिया पर,
निज प्रतिबिम्ब देख लगता,
शत्रु है कोई वहाँ पर ।
प्रतिबिम्बित हैं दोष स्वयं के,
ऐसा, वो परस्पर समझाते,
पुनः पुनः झाँकें अंतस में,
निज को दोषी पाते ।
अपने दोष देखने को हम,
जब राज़ी हो जाते;
उसे मिटाने का पूरा प्रयत्न,
तब ही कर पाते ।

ना हो निराश, श्रद्धा रख लो,
आयेगा वो, मदद माँग लो;
कहो - कृपालु ! कृपा कर दो ।

जिनने कथनी करनी में कोई फर्क न रक्खा,
प्रभु रहते उनके साथ, है दिल उनका ही सच्चा ।

अरे ओ मूरख !
अपनी बड़ाई ही चाही तो दोष चमकेंगे,
चापलूसी औ झूठ न चरित्र सुधार करेंगे ।
कीमती भंडार सम करते हो एकत्र प्रशंसा,
संतों की डांट-डपट पै ध्यान दो तो हो अच्छा ।
दे शहद यदि अज्ञानी तुमको तो ना पीना,
आत्मिक जन के कडुवे रस से मना न करना ।
परमात्मा का आश्रय, जब यह मन ले लेता,
आत्मिक आनन्द का अनुभव तब ही तो होता ।

हर फूल, रूप-गंध माध्यम से
करता है उजागर जग रहस्य ।
पृथ्वी पर है, जो भी गरिमामय सुंदर
प्रिय से ही मिला, समझ अंतस ।

'न शिकारी मैं, न शिकारी तुम,
हूँ मालिक मैं औ सेवक तुम,
ना छोड़ सकूँ, ना साथ रहूँ,
हर वक्त तुझे देखा चाहूँ ।'
''कर सकता दूर दर्द दिल तव,
घायल हूँ नियमों का मैं, पर,
दर्द ही खुशी दे माँ बनने की,
दाहे जब जग, घर दे शान्ति ।''

कल रात दिया जो बड़ा सा प्याला तुमने,
दे दो वह फिर से, मैंने तो फेंक दिया था;
मय, प्याला औ मैं भी तो सब इक ही संग था ।
था मैं सेब लटकता, जिसे प्यार था तव पत्थर से,
इक ही निशाने से कर डाला दूर तने से;
था वह कौन, कहो मुझसे, क्या अहम् मेरा ?

मैं ढ़ोली पीट रहा नग्गाड़ा इकला ही घेरे में,
तुम आनंदित होकर मुझको घुमा रहे हो ।
क्यों दूर खड़े हो, साथ मेरे कूदो पानी में,
फिर ही तो मैं तुम जैसा कुछ कर पाऊँगा ।
जैसे रहोगे मैं भी रहूँगा, बैठोगे मैं भी बैठूँगा,
एक प्राण-तन ही बन जायेंगे, हम दोनों ।
चलो, हम दोनों भाग चलें, अस्तित्व से दूर कहीं,
पानी से निकले मत्स्य समान मौन होने को;
क्या तब भी अस्तित्व में मुझको जाना होगा ?

दिखा न पाये रूप तेरा,
तो है किस काम की दुनियाँ,
यदि मिला न पाये तुझसे तो,
क्या व्यर्थ नहीं यह आत्मा ?

प्यासा हूँ मुझे जल ना दो,
अपना प्रेमी बना;
नींद मेरी हर लो !

प्रभु विरह इक गहन कूप है,
रस्सी बने याद उसकी,
प्रभु-सेवा संतोष दे जिसे,
करने दो उसे मनचीती ।
ज्ञान-ध्यान, भक्ति-रीति कोई,
'उसको' ना भरमा सकते,
प्रभु देखे बस प्रेम-भाव,
ना शब्द, सोच मानी रखते,
दिल तंतु उससे जुड़ जाते ।

'मैंने प्रभु को सब कुछ सौंपा'
गर्वित था मैं,
'हो तुम कौन, कहाँ से आये थे,
इस जग में,
कब औ कैसे मालिक बन गये'
कह कर, होश दिलाया तुमने ।

जन्म-भूमि से दूर पड़े, हम देखें राह,
वह दिन कब अयेगा, पुनः मिलेंगे जाय ।
पूर्ण चंद्र का इक टुकड़ा,
क्यों, कैसे उससे बिछुड़ा;
आगोश में अपने ले उसको,
अब तो दे दो पूर्णता ।

पूछ रहे हो - राह मध्य क्यों पड़े हो तुम ?
प्रीत सुरा इतनी दी तुमने,
होश रहा ना बाकी,
भरा हुआ हूँ अब भी उससे ।
मेरा सिर अपने सीने पर रख तुमने,
बिना सुराही, बिन प्याले के,
अपनी निष्कामी आँखों से;
इतनी सुरा ऊँडेली कि मेरे
सारे बंधन बहा दिये ।

तव चरणों पर शिर रख,
मैं क्षमा माँगने आया हूँ;
अहम् काँटों को करके भस्म,
पुष्प-शय्या पर सो पाऊँ ।
सौ काम पड़े थे पर अब,
तुव समक्ष न कोई पाऊँ,
दुःख से क्यों ना है छुटकारा,
कहूँ और मैं रोऊँ ।
प्रीतम ! बस भी जाओ मुझमें,
कब से दिल खोल खड़ा हूँ;
तुम ही से बोल रहा हूँ ।

प्रभु ! हमारे पत्थर दिल को मोम बनाना,
फिर जब तड़पन ध्वनि निकले;
तब सुन भी लेना ।

प्रेम की ताली दो हाथों से ही बजती,
जब चाहे प्रेमिका तभी लौ प्रेमी में जगती;
निज प्रेम शक्ति पै शंका कभी न करना,
तुम तभी ढूँढ़ने निकलोगे जब 'वो' चाहे मिलना ।

इक सुबह प्रेयसी ने प्रेमी से पूछा -
'क्या तुम अपने से भी ज़्यादा
मुझसे प्यार करते हो ?'
'सर से पैर तक तुम ही भरी हो मुझमें
इक नाम सिवा बचा न मेरा मुझमें'
ऐसे ही कर लो प्रेम, प्रभु से जग में ।

चींटी अपने हित इक छोटा,
कण घसीटती रहती,
पहचान न बोरे से करती, दुःख पाती ।
हम भी हैं वैसे -
अपना छोटा सा दरबा, हमसे ना छूटे;
जग में दिखे न 'वो', 'मैं' का बंधन ना टूटे ।
विस्तृत से पहचान खोलती आँखें,
जल मछली में, मछली जल में भाखें;
जग रहस्य लें जान, शांति-सुख पायें ।

है माशूक तुम्हारा वह, अब चुप भी होओ,
वह सुन रहा युगों से तुमको,
तुम भी उसकी सुन लो।

जब जग-आत्मा मिले, फूल खिल जायें,
निज हंता पर हंसें, अश्रु थम जायें;
जेल से भागे पागल सम,
जीवन में क्रांति लायें ।

'आओ, पास मेरे' मैल से जब जल कहता,
'शर्मिन्दा हूँ मैं' मैल यह उत्तर देता;
'शर्म हटेगी कैसे, पास न आओ तुम जो',
नहला गये ये करूणा पूरित वचन, मैल को ।

ओ, तीरथ को जाने वाले यात्री,
कहाँ जा रहे हो तुम ?
प्रीतम तुम्हरा यहाँ ही बैठा
लौटो, लौट आओ तुम ।
'मैं ना घूम रहा दुनियाँ में
निज प्रीतम को ढूँढ़ने;
बसा हुआ है वो तो मेरे
अंतस्थल में ।'

मंसूर ने पी थी जो शराब, अब वही सुगंध पाली मैंने,
साकी ! वही शराब मुझे दे, ठान लिया मेरे मन ने;
पिला और भी पिला आज, खुद को भी भूल जाने दे मुझे,
गान-खुशी से भरें दिवस अब, सज़ा होश की तू ना दे ।

प्रेमी है पर्दा मात्र, प्रेमिका ही है अंदर दीपित,
प्रेमी तो है मर्त्य, प्रेमिका ही है अमृत ।
संचित करना चहे प्रेम की शक्ति प्रेमी,
तो भार बढ़े वह उड़ ना पाये;
प्रकाश प्रेमिका का न मिले हर क्षण तो,
वह जागृत सजग भी ना रह पाये ।

आया हूँ इस बार जलाने अपने काँटे,
करूँ बगिया की सेवा, शुद्ध ये जीवन करके ।
छाया है निरपेक्ष मौन अब इकलेपन का,
चिन्ह बना ये आनन्दाश्रु, तव दर्शन का ।

आत्मा तो है छुपी हुई, अनजानी,
वाणी-कर्मों से हम अनुमान लगायें,
वो कैसी होगी ।
आत्मा कभी न बदले, पर
वाणी-कर्म, बदलते जाँयें -
धर्म-प्रार्थना सभी ।
दैवी आत्मा है अंशी, औ है -
अंश व्यक्तिगत आत्मा,
दुःख पाये, जब यह भूली ।

अच्छा है यदि गाथाओं में,
रहस्य प्रेमियों का बतलायें,
करें कैसे बिरहा की शिकायत,
वंशी से ही सुन लें ।

प्रेयसि का प्रेम तीर आ कर, जब दिल को छेदे,
प्रेम भरोसा हो जाता तब, प्रेमी उसको ढूँढ़े ।
प्रभु प्रति दिल में प्यार बढ़े ही जाता है जब,
प्रभु भी करते प्यार मुझे, निश्चित जानो तब ।

उत्तरी हवा आई, नभ स्वच्छ हुआ, दुःख बढ़ा,
हो स्वच्छंद बाहर घूमूँ, आऊँ ना फिर, आत्मा ने चहा;
उड़ रही ढूँढ़ती बाज समान, अपना मकान,
रूको, सुनो, सम्राट पुकारे, आओ लौट यहाँ ।

उसका प्यार हवा दे, तब हो उसकी वांछा ।
बिन पवन धूल उड़ सकती है क्या ?
बिन पानी नैया तैरेगी क्या ?
कशिश उसके आकर्षण में हो,
तब जिज्ञासु उड़ता ।

जब मैं कहता 'तुम'
अर्थ होता मेरा -
सारा संसार ।

प्यासा ही न चाहे पानी को,
पानी भी प्यासे को चाहे;
प्रेमी-प्रेयसि में भी ऐसा ही होता ।
कामना यदि है घोड़ा,
सवार बना प्रभु का प्रकाश,
तब ही फिर अश्व चला ।
घोड़े पर बैठा प्रभु उसमें,
अपनी ही इच्छा डाले,
चाहे, जिस ओर चलाये ।
जब सवार चाहे तब ही तो,
अश्व कुलांचें भरता,
गति, पथ सवार वश होता ।

जाओ

स्थिति है आदमी की ऐसी-
मन गर्दभ पर बैठ
उसीसे पूछ रहा है;
'कहाँ चलूँ ?'

छोड़ पुराना घर, नवीन में आते,
शीघ्र ही बिसर जाते पहले को;
जग में आ, आत्मा अपना घर भूली,
भौतिकता ने लिप्त किया -दृष्टि को ।

वाद-विवाद है नशा हमारा,
है शौक समस्या सुलझाना;
हर घटना, चरित्र की चीर-फाड़ करना ।
हम हैं वो पंछी जो,
ढ़ीला करे, कसे अपना फंदा;
यही उधेड़बुन जीवन बनता ।
खेतों, खलिहानों, आकाशों में,
पर फैला वो उड़ ना पाता;
आनंद कभी ना मिल पाता ।

ज्ञानवान मनवांछा स्ववश रखना चाहे,
बालक इच्छा पूर्ण करे औ भूल ही जाये ।

मेहनत जो करो, आराम मिले,
सह जाओ दुःख, तो खुशी मिले,
अनिच्छा में ही स्वर्ग छुपा,
इच्छा से घिरे तो नर्क मिले ।

बाहर से रज दिखती भू में,
अंदर प्रकाश ही रहता;
मोती अंदर, सीपी बाहर,
यह युग्म सभी में होता ।
है मात्र आवरण खोल बाहरी,
अंतस ही सच होता;
यह सत्य न क्यों मन गहता ?

नारकीय दानव जो तुममें छुप कर बैठा,
फंसा तुम्हें लोभ कांटे में;
तुमको ही फिर खा जाता ।

देखूँ-दिखाऊँ दोष दूजे के,
मन को जब अच्छा लगता,
जानो, हो तुम ग़लत राह पर
प्रभु-पथ यह ना हो सकता ।

कार्य न उसका समझ पाये हर आँख,
कारण है - आँख का परदा ही;
छेदक दृष्टि से छेदें परदा,
सत्य देख सकते हैं तभी ।
कार्य कहलायें भले-बुरे
दृष्टि पर्दे के कारण ही ।

गलत काम कोई करे तो मन में,
नारकीय लपटें उठ आती,
'मैं तो लड़ूँ धर्महित' कहते,
निज हंता ना दिख पाती ?

है द्वेष धर्म का शत्रु, नरक का हिस्सा,
स्वर्गिक पथ की वही रूकावट बनता,
वह खींच ही लेगा तुम्हें, नरक में,
रहना सजग, ना पड़ फन्दे में ।

इकट्ठे कर दर्पण पर रक्खो अपने दोष,
ग्लानि से रोओ, असली रूप तभी दिखेगा ।
दोष युक्त तन का ही वैद्य उपचार करेगा,
होगा कपड़ा फटा तभी दर्जी सीयेगा;
व्यर्थ दिखे धातु तो रसायनविद् बदलेगा,
करें कुरूप पर काम तो ही सौंदर्य झरेगा ।

हर दिन ही शुभ दिन होता है
निज के दोषी विचार, वाणी औ कर्म के कारण
इन्सान दुःखी होता है ।

दोष देखना हो तो पहले
निज में देखो;
यही बता देगा,
सुधार के हित तत्पर हो ।

अरे ओ भेड़ !
स्वइंद्रियों को चरने दो
वर्त्तमान के खेतों में,
इक-दूजे की रहबर बन वे,
जा पहुँचेंगी स्वर्ग में,
तभी बता पायेंगी, निज रहस्य तुमको
बिना शब्दों औ अर्थों के ।

जो व्यर्थ वासनाओं के प्याले,
पिये ही जाते;
भेदक दृष्टि वे ना पाते ।
जो वांछा प्याले पर करें,
अंतःदृष्टि के पट खोलें;
सारे रहस्य प्रकाशित हो लें ।

सांझ हुई सब प्रेमी, प्रभु मंदिर जा पहुँचे;
चोरों सम हल्के प्रकाश में इक-दूजे से भेंटे ।
वहाँ कर रहे थे वे, इक-दूजे की चौकीदारी,
इससे उन सबकी, जग-इच्छा ही जाहिर थी ।
उनमें से एक सिंहासन पर जा बैठा,
हिन्द मध्य जैसे कि तुर्क कोई आया;
होकर अपमानित आया जोसेफ जैसे,
किये स्वप्न उजागर उसने सम्राटों से ।
सब बोल रहे जैसे मिट्टी, मिट्टी से,
बिन समझे इक दूजों को प्रभु के बंदे ।
सच है, धान खेतों में एक सा लगता,
काटें तभी दिखे अंदर है कैसा;
आधा भूसा, आधा दाना मिलता,
वैसा ही भू का जन-जीवन होता ।

अहंकार

ना भाव, सोच, भाषा है,
ना आत्मिक पहचान;
कहते उनके ढ़ोल-नगाड़े,
कितना है रिक्त इन्सान ।

परम दोस्त जब दिखे तो,
निज दृष्टि पर इतराऊँ;
दृष्टि में से वह ही झाँके,
भेद समझ ना पाऊँ ।

ईर्ष्या-द्वेष न संग रखे, वो भाग्यवान है,
दिव्य गुणों की करो चाकरी;
ईर्ष्या-द्वेष पतन हैं ।

तथाकथित ज्ञानी को बनाते
ईर्श्या, द्वेष, दर्प अंधा औ बहरा,
मन माफिक़ घटना, शब्द घुमा वह
दृष्टि पै डाल लेता परदा ।
गुलाम बनाता ऐसा ज्ञान,
इससे तो अज्ञानी अच्छा;
ईर्ष्या-द्वेष, स्वार्थाभिमान
पंजों से, शीघ्र मुक्त होता ।

'ना' सुनना क्रोध पैदा करता,
क्रोध कीट दानव होता;
तुरत ही उसे कुचल दो ।

रहा सुई में धागा तो फिर,
उसे हटाये बिना न दूजा;
जा पायेगा अंदर ।

जो निज स्वरूप जानना चाहे,
नर्क की गाथा पढ़ ले;
भौतिक-आत्मिक रूप उभय
तव 'मैं' ही से तो उपजे ।
इक है सर्प, दूसरा दानव,
पहले को मारना आसां पर,
दूजा बहुरूपी, नित स्वरूप बदले ।
बहुरूपी का हर चोला, फंदा है ऐसा
(जो) अनुगामी को लील,
चिन्ह ना उसका छोड़े ।

मानव को भेंडा कर देते हैं काम औ क्रोध,
आत्मा पर छा कर, परे सत्य से कर देते,
तब स्वार्थ उजागर होते, गुण छुप जाते,
दिल औ आँख के बीच, हजारों पर्दे आ जाते ।

इक दिन हाथ में चूहे के ऊँट की नकेल जो आई,
उसे मनुज सम लगा हाँकने, नग, मैदान, खंदक, खाई ।
आई नदी सामने तो वो ठिठका खड़ा हो गया,
बोला ऊँट 'चलो भाई, अब समय बहुत हो गया ।'
'कैसे चलूँ, डूब जाऊँगा', 'न डरो, जल है थोड़ा सा,
बस घुटने डूबेंगे मेरे, क्यों करते तुम चिन्ता ?'
'तुम्हारा घुटना मेरे सर से दो ढ़ाई फुट है ऊँचा'
'फिर क्यों करते नक़ल, ना हो वैसा बनने का?'
हो ना राजा, करो न शासन, गुरु बिन हुए न दो शिक्षा,
बिन नाविक हुए चलाओ ना, बैठ आनंद लो नैया का !
प्रभु ने न बनाया निज प्रतिनिधि, बोलो ना, केवल सुन लो,
संत बनें ना शास्त्रज्ञान से, चल निज पथ निजता लाओ ।

प्रभु समीप वो ना जा पाता,
जो अपने को पूर्ण समझता ।
'मैं ही सबसे बड़ा हूँ ज्ञानी-ध्यानी'
इससे बढ़ बीमारी कोई न आनी ।
इस सोच से जब दुःख दर्द बहुत वो पाता,
रोए, कलपे कहे अहम् से, तोड़ूँ तुझसे नाता ।

मैं को छोड़ना है दुश्वार,
छोड़ें तब ही मिले दातार ।

ना कोई बड़ा है, ना ही छोटा,
ना कोई कम है, ना ही ज़ियादा;
बुराई तो है ईर्ष्या-द्वेष में,
दोष हम छोटे-बड़े को दे दें ।
'वो है छोटा या कि बड़ा है,
बंध ईर्ष्या-द्वेषों से कहते;
जब तक ना छोड़ें हम इनको,
शांति, तोष, आनंद ना पाते ।

अहम् सीढ़ी पर चढ़े जा रहे जब सब,
तब नीचे गिरना ही बस निश्चित होगा ।
जो, जितना ही ऊपर चढ़ जायेगा,
निज हड्डी वो उतनी ही तुड़वा लेगा ।
स्वयं अहम् को तोड़ गिराओ,
प्रभु मिलन तभी संभव होगा ।

हमारा 'मैं' है नरक का हिस्सा,
प्रभु शक्ति से वो गिर जाता ।

स्थिति है आदमी की ऐसी -
देवदूत से पंख लिये, गर्दभ की पूँछ से बाँध दिये,
कहा कि 'मैं बन गया विधाता'
और मूढ़ भी हँसा दिये ।

अरे ओ बुद्धि के अभिमानी !
मूर्ति पूजकों से अपने को बड़ा न समझो,
सार्वभौम बुद्धि से मिली,
इक लघु किरण ही तुमको;
सोने का मुलम्मा ही है वो ।

युद्ध जीतने में न वीरता होती इतनी,
'इंन्द्रिय' औ 'मैं' विजय करें तो होती जितनी ।

धर्म ज्ञान से मिलती है,
हमको आत्मिक आज़ादी;
पर, ज्ञान प्रसिद्धि के हित हो,
तो होता दुनियावी ।

प्रभु के सिवा न है कुछ भी
तो कैसे राह बताऊँ उसकी ?
हंता की मृत्यु ही, भेद वह खोलेगी,
भ्रमित न होगे फिर न रूकावट होगी ।

दूजे का यह दोष नहीं है मुझमें,
यह सोच न खुश हो जाना;
वह कल आ सकता है तुममें,
दोषी से घृणा ना करना ।

प्रभु समीप रहने का अर्थ,
ना है छोटा चाकर होना;
हिसाबी तो होता अस्तित्व,
यह है अनस्तित्व में होना ।
है प्रभु एकता का ये अर्थ-
बस उसमें ही मिल जाना;
निज के गहरे अंधियारे को,
सूर्य-तेज में लोपित करना !
जब तक ना छोड़ें मैं, मेरा,
यह मिलन नहीं ही होना ।

लोभ, क्रोध, द्वेषादि स्वार्थ, सब
दृष्टि-दोष पैदा करते,
मेघ सम आत्मा पर छाकर,
परे सत्य से कर देते ।
है सभी दुर्गुणों की जाया कामना तुम्हारी,
और अन्य है सांप तो है ये अजगर जैसी ।
और सभी दुर्गुण हैं जैसे, काला पानी लोटे में,
पर झरना काले पानी का, वासना है ये देखूँ मैं ।
'मैं हूँ सबसे बड़ा' यही तो है शैतान की बीमारी
हर प्राणी के निम्न तलों में रहती है यह हत्यारी।

मैं कहता - 'राह सुझाओ मुझको'
तुम कहते - अपना यह सिर,
अपने ही पैरों तले दबा दो;
तब, तारों से भी ऊपर उठ जाओगे ।
राह हज़ारों दिख जाऐंगी,
पहुँच सकोगे जिनसे मुझ तक;
निज पथ से हर व्यक्ति पहुँचता,
समझ जाओगे ।

'मैं' मार, आत्मा करो मुक्त,
आत्मिक रहस्य फिर बतलाओ;
दर्द बहुत पाओगे पहले,
फिर अनंत आनन्द पाओ ।

दूजे के घर में अपना घर न बनाओ,
दूजे का ना, निज काम ही देखो - भालो;
निज तन है दूजा, रखो ममत्व न उससे,
सारे दुःखों की जड़ है, लगन ये उससे;
कस्तूरी लगा तन पै, आत्मा को ढ़ँकता,
फिर छुपाछुपी तुम संग, बहुरूपी खेलता ।

मैं ही हूँ सबसे महान्, शैतान की बीमारी यह,
मानव मन के निम्न तलों में, छुपकर बैठी वह ।

भले-बुरे काम करने को,
देव औ दानव उकसाते;
बसे हममें, पर मालिक बनते,
हमें गुलाम बनाते ।
जनक प्रभु की बात न सुनते,
उसका कहा ना करते;
उन दोनों के फेर में पड़,
हंता को बढ़ावा देते ।

चींटी से लेकर हाथी तक,
प्रभु कुटुम्ब के हैं सदस्य सब;
सबका ही ध्यान रखता है वह ।
अपनी सत्ता अलग समझते,
व्यर्थ कामनाऐं हम करते,
दुःख तभी हममें बस जाते ।

विश्वास दिलाये दुःख औ दर्द से छुटकारा,
अविश्वास करे रूद्ध विकास, जन-मन हारा ।

नेतागिरी तो है ही विष ।
पर, रहो प्रजा संग, बनके प्रजा ही,
तो न चढ़ेगा हंता विष फिर;
कोई इक बिरला ही, होता ऐसा माहिर ।

'मेरे सुंदर पंख मुझे यातना बहुत दिलवाते,
उनको लेने के खातिर ही, प्राण मेरे सब हरते;
मैं शक्तिहीन ना कर सकता अपनी ही रक्षा,
स्वयं पंख मैं नोंच गिराऊँ, यह ही होगा अच्छा ।'
'ना नोंचो अपने पंख मोर, उनका अभिमान छोड़ दो ।
बिन शत्रु आत्मिक युद्ध करोगे किससे,
भोग न प्रभु की सृष्टि, मिटाओ उसको कैसे ?
वासना न हो तो संयम करोगे किसका,
हो न विरोधी, काम क्या फिर साहस का ?
पाओ विजय मुश्किलों पर, रोम-रोम खुश हो,
भोगो प्रभु सृष्टि, उसमें मैं, मेरा भाव छोड़ दो ।'

है साकी में वो मस्ती, जो सुरा-शराबी में ना है,
सुरा छलक जाती प्याले से, उसका उसे भान ना है ।
सीपी में बंद मोती जैसे, मिल ना पाये सागर से,
अहम् खोल छोड़े बिन प्राणी, 'प्रेम' से कोसों दूर रहे ।

सेवा कार्यों से जानें हम,
दयालु है यह कर्त्ता;
पाठ-पूजा भी बतलाये,
कर्म आत्मिक हो सकता ।
सेवा, पूजा का दर्प परन्तु,
प्रभु से दूर कर देता ।

अहम् पशु को मार,
मुक्त अंतस को करलो,
चेतनता में मिल जाओगे ।
'मैं ' के खूनी पंजों से बाहर निकलो तो,
निज का शुद्ध स्वरूप दिखे ।

मिट पाये ना दर्द तुम्हारा,
जब तक 'मैं'' ना तुमने मारा ।

आत्मा है प्रकाश जो शुभ को ढूँढ़ निकाले,
पर, अहम् अंधेरा तो इंद्रिय सुख ही चाहे ।
अहम् का घर है तन, आत्मा अनचाहा अतिथि,
सिंह सम रक्षा करे श्वान, निज तन क्षेत्र की ।
अतिथि का स्वागत करें, तभी वह आये,
उसके बिन, तन-मन न प्रकाशित होये ।

जीवन छन्द

रीति, मूर्ति की जड़, भक्ति ने ये बतलाया,
जग में उलझा इन्सां, 'उसका' भेद न पाया ।

लोगों की चीर-फाड़ करते साधारण शेर,
निज निम्न तलों को तोड़ मरोड़े, सच्चा शेर ।

आत्मा है दर्पण स्वच्छ और
तन है उस पर जमी धूल;
अपना सौंदर्य न देख सकें,
हम नीचे दबे, है ऊपर धूल ।

प्रभु ने विस्तृत संसार बना,
निज की सत्ता दर्शाई,
फैलाओ आत्मा के सुर,
हर कण जाने ये भाई ।

मेरे अंतस के साथी राजा को कैसे जानोगे ?
देखो न सुनहरा मुख मेरा, हैं पाँव मेरे लोहों के ।

गुण-अवगुण होते हैं क्या ?
पहला प्रभु की ओर मुख़ातिब करता,
दूजा राह विरोधी पर चल पड़ता ।

तुम हो इक छाया, मिट जाओगे,
रवि प्रकाश ऊपर आने पर ।
उलझे रहोगे कब तक निज में,
दृष्टि घुमाओ अपने स्रोत पर ।

हल्के, रंगी फूलों के बीज लगाने वाले,
गुलाब वाटिका में वे तुमको नहीं मिलेंगे ।

कानों की गहराई दिल तक
ध्वनि पहुंचाती,
प्रभु ध्वनि, कर्ण पर्दे को छेद
उसे दृष्टि देती ।

छाया सम ही है प्राणी का जीवन,
निज की उसकी सत्ता ना है ।

दीपक सम है ये तन मेरा भू पर,
पर, प्रकाश सम आत्मा, अनन्त से आती ।

पानी के ऊपर शीशी औ नौका हों तो वे तैरें,
शीशी औ नौका में पानी भरा हो, तो वे डूबें;
दिल-दिमाग हों भाव-विचारों के ऊपर, तो उड़ते,
जो भाव-विचार भरे हों वे, तो खड़े भी ना हो पाते ।

मैंने कुरान की मज्जा ली है,
हड्डी ली है नासमझों ने ।

यदि करो विचार गुलाबों का,
उनके सम ही महकोगे;
जो करो विचार, काँटों का ही,
छेदोगे, छिद जाओगे ।

दिल को दुःख औ दर्द से राहत,
श्रद्धा ही पहुँचाये ।
पर, विश्वास की कमज़ोरी,
करे निराश औ तड़पाये ।

न करो एकत्र सभी सीपी,
सब में ना होता है मोती;
दिल की आँख से देखो-परखो,
जो खाली हो उसे छोड़ दो ।

सौ अंधों की लकड़ी से,
बेहतर है देखने वाली आँख;
कर सके फर्क कंकर, मोती में,
उसको ही कहते हैं आँख ।

नाम-रूप रखे भिन्न उन्होंने,
स्पर्श समझ से, जैसा पाया ।
किया स्पर्श सूँड को इक ने,
बोला नलिका है यह तो;
दूजे ने छुआ जो कान, कहा -
पंखा ही लगता है मुझको ।
तीजे ने पैर छू बोला-खम्भा,
चौथे ने पीठ छू - सिंहासन;
पर, दृष्टिवान की दृष्टि में,
कुछ और ही था हाथी का तन ।
पारसी, यहूदी, मुगल, ईसाई,
भिन्न अंग प्रभु के देखें,
ज्ञानी तो भेद से अनजाना
सब एक ही है निश्चित जाने ।

स्पष्ट देख पायें खुशियों को,
तो प्रभु ने दुःख दर्द दिये;
वस्तु-विचार उजागर हों, जब
उनमें विरोधी-तत्व दिखे ।
पर, है ना कुछ प्रभु विरोधी
ढूँढ़ें तब ही हमें दिखे ।

इक बार दृष्टिहीनों के मध्य,
महावत हाथी ले आया

कयामत की क्यों करो प्रतीक्षा,
समझ की आँखें खोलो,
गलत काम पर सज़ा,
सही पर पुरस्कार मिले, तोलो ।

क्यों न याद रख सकें, कहाँ थे
और कहाँ से आये हम ?
मेघ पर्दे ने ढ़ाँक रखा क्यों
आत्मा को तारों के सम ?
जग की भूल-भुलैया में प्रभु भेज,
चहे शायद समझाना;
बाहरी रूप हैं केवल भ्रम,
अंतस जाना तो ही जाना ।

ज्ञान के स्रोत हैं केवल-दो ।
एक मिले, गुरु-शास्त्रों से,
दूजा, आत्मा औ दिल से मिले ।
एक भ्रम, बोझ बढ़ाये जाये,
दूजा स्पष्ट, निर्भार करे;
दर्पण सा देखे, दिखलाये ।

कारण-कार्य जानने में,
तर्क ही सहायक होता है;
पर, आत्मिक जग जाने बिन,
कोई प्रबुद्ध ना होता है ।
दोनों का ही है महत्त्व,
केवल भौतिकता लक्ष्य न हो;
मानव बुद्धि की है सीमा,
आत्मिक बुद्धि पै भरोसा हो ।
सीमित तर्क काम ना आये,
आत्मा अनन्त चेतन कर जाये;
ज्ञान-बोध वह ही तो लाये,
असत्य हटे, सत्य मिल जाये ।

प्रतिक्षण नया हो रहा है जग,
इसकी क्षणभंगुरता देखो,
इस परिवर्तनता के जग में,
जो है स्थिर उसको ढूँढ़ो ।

दिल को न मजार बनाओ कि,
कोई किरण पहुँच ना पाये;
उट्ठो खोलो द्वार कि
सब रौशन हो जाये ।

भाई मेरे,
बह रहा जो तुमसे बुद्धि-ज्ञान,
आया है प्रभु कृपा से;
तुम्हारा दिल ये प्रकाशित है,
उसके ही बहु स्रोतों से ।
धन्यवाद दो, घमंड ना करो,
निज को सब कुछ ना जानो;
जग विडम्बना में ना उलझो,
है सब में 'वो' पहचानो ।

रूप, रंग, गंध भिन्न हैं जल के,
नद, नाले या कूप, समुद्र के;
पर प्रतिबिम्ब चाँद-तारों के,
उनमें एक से पड़ते;
ज्ञानी, ध्यानी वही देखते ।

प्रभु की मद जिसने ना पी,
वो बालक ही है,
युवा न घबराता मस्ती से ।

प्रभु के प्यार की जड़ें जमीं हैं - प्रभु के ज्ञान में,
अज्ञान न उसका पहुँचा सकता, प्रेम लोक में;
बिन जाने-पहचाने, किसीसे, कैसे मिल लें ?

डूब जाओ पूरे ही निज वांछा-वस्तु में,
शेष नहीं कुछ रखना;
उसके ही रूप-गुण अपना लेना ।
यदि प्रकाश की वांछा है तो शक्ति बढ़ाके,
उसके धारक बनना;
प्रभु से दूर जाना चाहो तो अहम् बढ़ाना ।
यदि कारागृह से निकसा चाहो,
प्रेयसि से मुख न मोड़ना;
प्रेम समुद में डूब, साथ उसका पा जाना ।

चीज़ों का मूल्य जानते हो,
आत्मा के मूल्य की खबर नहीं;
तारों-मणियों का जानो शुभाशुभ,
'अशुभ कि शुभ मैं' जानो नहीं;
मरने से पहले, निज को जान लो,
है जीवन का सार यही ।

तुम ना डरते मृत्यु से खुद से ही डरते हो,
देखो तो किससे भाग रहे हो ?
है स्वयं तुम्हारा ही चेहरा यह नहीं मृत्यु का,
तव आत्म वृक्ष से ही तो मृत्यु पत्र ये आया ।
काँटों से बिंधे हो तो तुमने ही वो बोया था,
रेशम में लिपटे हो तो, बुना भी तुमने ही था ।

ज्ञान में रहना सावधान, पार उसके हो जाना,
जग की नज़रों में पागल हूँ,
यह फिक्र नहीं करना ।
फिर कोई कभी भी या कुछ भी तो,
तुम्हें प्रभावित कर न सकेगा;
बोल, शब्द सब हो जायेंगे अर्थहीन,
आत्मा औ भाव ही, सदा उजागर होगा ।

गठजोड़ कार्य औ कारण का ही तो है दुनियाँ,
दूर दृष्टि वाले ही देख पाते - ये कीमिया ।
जो भी अच्छे-बुरे कर्म हों, बिन कारण ना होते,
वे कारण भी पिछले कर्मों पर आधारित होते ।
अज्ञान रहे तब तक प्राणी, बन कर्त्ता बंधन बाँधे,
जब बने ज्ञान दृष्टि से माध्यम, गठजोड़ नहीं हो पाते।

कौन हैं हम औ क्यों उलझे हैं,
इस जग में ?
क्या अल्ला है, इक शब्द मात्र ?

पकड़ छोड़ने में क्यों कँप-कँप जाते हैं हम ?
दर्द-गर्द से फिर भी छुटकारा ना होगा,
हो उत्कंठित छोड़ें सब, प्रभु ओर रूख करें,
भय-दर्द मिटे, चूहा सिंह शावक बन जायेगा ।

जगसरिता जल से सूख गई है
अब न भिखारी सम रोओ ।
मेज़बान, मेहमान भी हो तुम,
दुनियावी भूख-प्यास छोड़ो ।
आत्मिक झरने से ही अपनी
प्यास बुझा लो ।

आकार की पूजा करने वालो,
भाग रहे हो चेतनता से;
प्रभु और पुजारी ना हैं दो ।
आत्मिक जग में दीवारें ना,
ना व्यक्ति, ना ही स्तर;
हैं दोस्त सभी औ एक ही हैं ।
इक ही मिट्टी से बने सभी,
यह जानो, सहज शांत रह लो;
है जीवन, जल-दर्पण सा ही ।

रवि किरणें जब नभ पर चमकीं,
भू पर कुछ कण चमक उठे;
बरबस ध्यान गया उन पर,
ऐसे ही मन प्रिय ओर खिंचे;
जब मन में, बिजली सी कौंधे ।

'फल-फूलों में स्वाद-रंग को भरता कौन ?'
पर, स्वाद चाहते हो या स्वाद भरने वाले को ?
बहु आश्चर्य भरे सागर में,
वह भी है यहाँ, जो है सागर ही ।
कलाकार की भी है इक चेतनता,
सोचो चेतनता के जनक की ।
तिलों में तेल कहाँ से आता, सोचो
आँखों में दृष्टि कहाँ से आती ?
शंका करते कुछ लोग यहाँ भी,
पर, देख सकोगे कानों, रोमों से भी;
चलो, उसी भाषा में बात करें अब ।

वस्त्र की बाँह के अंदर हाथ छुपे,
वैसे ही देह के अंदर प्राण छुपे;
लगे चेतन ये दृष्य जगत्, अदृश्य आत्मा,
पर, तुम इससे ना भरमाना,
बाह्य क्षेत्र गेहूँ का भूसा, आत्मिक प्रकाश है दाना ।

दर्पण का न है व्यक्तित्व कोई,
जो झांके उसमें, पाये खुद को;
तुम भी वैसे ही बन जाओ,
जग झाँके तुमसा बन जाने को ।

मरघट का अंधेरा है दिल में,
दैवी प्रकाश ना पहुँचे;
क्योंकि द्वार बन्द है ।
उट्ठो ! द्वार खोल, दिल के,
मरघट से बाहर आओ;
देखो, सब रौशन है ।

जहाँ कहीं से मिले, करूँ उपभोग,
मैं इन्द्रिय सुख का;
इस जन प्रकृति से बंधा मनुज,
तिनके सम इत-उत उड़ता ।
वांछाग्नि जलाती तन-मन को,
प्रभु विश्वास ठंडक देता,
उसका फव्वारा तन-मन को
नहला के, स्वच्छ कर देता ।

काँटों की झाड़ी ही होतीं - बुरी आदतें,
कई बार छिद चुके हैं, अब भी, क्यों ना जागें ?

भौतिक जग में लिप्त होओगे जितना,
आत्मिक पथ भी दूर होयेगा उतना ।
जग में जगना नींद से बदतर होता,
प्रभु घर का दर ही वो बंद कर देता ।

दिमागी और तर्क संगत है ज्ञानवान का ज्ञान,
पर आत्मिक, अतर्क्य ही होता, बुद्धिमान का ज्ञान ।

चाहे विस्तृत नभ में उड़ना,
संभव कैसे सशरीर;
आत्मा है बाज समान
और है तन, उसकी जंज़ीर ।

इस तन में आने के पहले,
मेरा रूप-रंग था क्या ?
किस हाल में और कहाँ पर था,
क्यों जन्म हुआ था, कारण क्या ?
याद नहीं आता क्यों मुझको,
परदा पड़ा है ये कैसा ?
जीवन है यह तब ही सार्थक,
जब जानूँ आदि-अंत इसका ।

पुनः न बन सकता है लोहा कोई - दर्पण,
पुनः न गेहूँ बनती रोटी, कर लें लाख जतन ।
पुनः न बन सकता है पका अंगूर ही कच्चा,
पुनः बुरे ना बनोगे, जो बन जाओ अच्छा ।
पुनः अंधेरा ना आए, रोशनी जहाँ हो,
समझदार बन गये तो फिर बचपना कहाँ हो ?

कार्य से पहले फल विचार ही
क्यों आता सबके मन में ?
सधे न जिससे स्वार्थ कोई,
वो कार्य न जन-सामान्य करें ।
कार्यों का फल निश्चित है,
जग में जाना था, तुमने ही;
कारण-फल देखें कर्म से पहले,
चाहा होगा तुमने ही ।

आज़ाद प्रभु ने हमको भी दी
आज़ादी की इच्छा,
'मेरी ही मानो' कहकर वो
बाध्य न हमको करता ।
संबंध कार्य-कारण का
है अटूट, बतलाता रहता;
आँखें खोल देख लो जग
फिर निर्णय लो, यह कहता ।
जग फेरे में पड़े रहोगे
'गर मानी मन इच्छा
दिल की राह चल आनन्द पाओ
सुख-शान्ति वही दिलवाता ।

माला-कुरान भी रह सकती हैं,
निम्न तलों के हाथों में;
गौर करोगे तो जानोगे,
वे बरछी तलवार ही हैं ।

भौतिक परिवेश का ज्ञान,
बना देता तुमको वैज्ञानिक;
बाहर की दुनियाँ से तुम
वाकिफ़ हो जाते ।
भू, जल, अग्नि, वायु, गगन,
पशु-पक्षी, मनुज औ कीट-पतंग;
चांद, तारों, नक्षत्रों के
रंग-रूप, कार्य जान जाते ।
पर, इनका रचेता, चालक कौन,
प्राण डालता, हरता कौन;
ये ना बतला पाते ।
मैं हूँ कौन, कहाँ से आया,
क्यों, कब तक रह पाये काया;
रूप, रंग, गंध क्या है मेरा,
इसे जान ना पाते ।
इस विषय के ज्ञानी बनना हो तो,
निज अंतस की ओर चलो;
अपना आत्मिक भेद जान कर,
सब जग के ज्ञानी बन लो ।

आत्मा है फल का गूदा,
तन है छिलका;
गूदे की करो संभाल,
परे रख दो रे, छिलका ।

जंज़ीर से जकड़े कैदी के भी,
तन पै ख़ुशी छा जाती है;
जब निद्रा सपने में सही, पर
उसे मुक्त कर देती है ।
'है मुक्त सदा ही आत्मा'
इस पर हो अटूट विश्वास;
जग कार्य कोई बंधन न लगे,
हर श्वास लाये प्रभु पास ।

देव औ दानव, भला औ बुरा,
दोनों ही ज़ोर लगाते;
पर, निज सा हमको भी 'वह'
आज़ाद ही रखना चाहे ?
चुनने में रखा स्वतंत्र हमें,
परलोक-लोक जो भी चाहें;
जब आये क़यामत का दिन,
चुनने का मोल चुकायें ।

जो कार्य स्वतः ही होते हैं,
ईनाम, सज़ा कुछ उनको नहीं दिया जाता;
इच्छा से किये गये कार्यों का, ही
परिणाम भुगतना पड़ता ।
अतः बीच में ना लाकर स्वइच्छा,
बस उस प्रभु के माध्यम बन जाओ ।

पानी में चंद्र की छवि समान,
प्राणी में उसकी छवि दिखती;
बहते जल सम हैं - जग प्राणी,
चंद्र छवि वैसी ही रहती;
कुछ और लगे तो है दृष्टि की गलती ।

गुरु

सुंदर औ जीवंत किया जग को बसन्त ने,
हरे-भरे हैं खेत, वायु में भरी सुगंध फूलों ने;
आनंद, खुशी साम्राज्य छा गया जग में ।

यहाँ जीना-मरना ही तो
हो रहा है प्रतिपल ।
हर क्षण मरता, नया जन्मता
हमें लगे कि क्रम ना टूटा
मुहम्मद ने यह बतलाया था ।

करें बड़ाई दुनियाँ की,
गर्भस्थ शिशु से;
कहे मौज करो बाहर आकर
निकलो विष्ठा से ।
विश्वास न कर वो
गर्भ कैद से चिपका रहता,
हैं उस जैसे हम नेत्रहीन
संतों का भरोसा ना होता ।

यदि छत पर जाना हो तो,
सीढ़ी पर चढ़ना पड़ता,
कुऐं से जल लेना हो तो,
रस्सी का सहारा लगता ।

जिसने देखा -
गंधित, ज्योतिर्मय अरूप को;
चलें उसी के पास,
दिखाये पथ वह हमको ।

फल-फूलों से लदे पेड़ के नीचे बैठें,
सत् चित् आनंद ज्ञान, सहज ही तब मिल जाता ।
भरें जो झोली दर-दर घूम हाट शिक्षा से,
दिखे अंत में, सब्ज़बाग वो भ्रमकारक था ।

बतलाया संत ने, प्रभु कहते हैं -
ऊँच-नीच के पात्रों में, मैं ना रहता हूँ,
पृथ्वी और स्वर्ग में, नहीं समा सकता हूँ ।
मुझे ढूँढ़ना चाहो तो बस वहाँ ही ढूँढ़ो,
(जहाँ) निज विश्वास भरे, भक्त दिल में बैठा हूँ ।

तुम आये भू पर, कि लोग संबंधित हो पायें,
ना कि आपस में लड़ते ही रहकर;
निज जीवन नष्ट करें ।

हो चट्टान खुरदरी पर, संगमरमर बन सकते हो,
यदि संतों के संग-साथ, उन जैसे रह लेते हो ।

प्रतिबिम्ब पड़े ना जब तक,
जानो बना न शीशा अब तक;
पथदर्शक गुरु से शीघ्र न लेना छुट्टी,
बिन मोती बने बूँद ना त्यागे सीपी ।

होते हैं गुरु और संत,
पथचिन्ह राह के;
खो न जाँय आत्मिक यात्री ।
एक झलक कोई पा ले फिर
अंतर्दृष्टि काफी होती;
वे ही बनते तब धर्मगुरु,
जब राह न कोई शेष रहती ।

प्रतिबिम्ब मात्र छाया होता,
पर, लगातार दिखता ही रहे,
तो सच की ओर मुखातिब करता ।
पारस है, तुम्हारी ही आत्मा,
उस तक न पहुँच पाओ तो
पथदर्शी गुरु ढूँढ़ लेना ।

आया बसन्त भूतल पर, सौंदर्य, प्रेम लाया,
सभी ओर खुशियाँ, आनन्द उसने बरसाया;
रंग, गंध से मस्त हुआ प्राणी मन लहराया,
प्रेम शक्ति से दुःख में सुख, मृत तन में प्राण आया ।

भौतिक जग की प्रेयसि ने,
ग्रस लिया है देवी चेहरा;
डुबाई झूठे गुरूओं ने,
सच्चे संतों की भाषा ।
होकर न निराश पुकारे जाओ,
आगत को खुशी से;
परखे जाओ ।

यह राह सदा खुशियाँ देगी, ना करना आकांक्षा,
पकड़े गये हो, गुरु सिंह से, दोस्त मेरे !
ऊंड़ेलेगा सर पर दुर्गंध, उसे सुगंध समझना,
बाँध तुम्हारे दानव को वो करवायेगा फेरे ।
तव कालीन में भरी हुई है, अहम् धूल वर्षों से,
वो उसे पीट कर बारम्बार साफ करेगा रेशे,
अपने स्वप्न जागरण में भी डाँट सुनोगे उसकी,
तव अनगढ़ पत्थर से सुंदर मूर्ति बने तब ही रे ।

ऐ दिल ! प्रभु प्रेमियों के संग, अब भी रह ले,
तेरा भी प्याला, प्रेम से भर जायेगा;
है उनकी आत्मा खुली किताब, पढ़े तो,
जग के सारे रहस्य जान जायेगा ।
जिज्ञासा, भय, क्रोध से भी यदि जाये,
बरस रही प्रभु कृपा, हास्य तेरा कह देगा ।

मेरी सौ बीमारी का ईलाज एक, कर पाओगे ?'
पूछा हकीम से मैंने;
'मृत्यु ना आई अब तक'
पूछा ज़वाब में उसने ।
'आई थी, पर तुम्हरी गंध से,
शायद पुनः जी गया मैं ।'
मेरे सीने पर रखा हाथ,
हिंसा उभरी तो दी शराब
दिया साथ छोड़, झगड़ों ने ।
मैं प्रेम-पुजारी घूमूँ-नाचूँ,
अब पीनेवालों के संग;
जानूँ न भ्रमित हूँ या सच, मैं ।
कभी राजा सा, कभी रंक सा,
किस चक्कर में मुझ को डाला;
हटाओ मय, मुख बंद किया अब मैने,
देखो ! पूरा ही सराबोर हूँ मय में ।

तुम हो दोस्त मेरे औ शरणस्थल भी,
वो दिल हो जो करे प्रेम मेरा आकर्षित;
मेरे मालिक हो औ मेरे पथदर्शक भी ।
तुम अनुभवी, और हूँ नौ सिखिया मैं;
हो बीज-पेड़, साकी-मय भी तो हो तुम ही तो,
बिन शिक्षा दिये, यों मुझे छोड़, ना जाओ ।

प्रियतम को जानना चाहो तो
संग-साथ प्रेमियों का ढूँढ़ो,
यदि महान् कहलाना हो तो
वाक्पटु पंडित ढूँढ़ो;
जीना हो यदि आत्मिक जीवन,
ढूँढ़ शम्स सा मित्र;
संग ही रह लो ।

मुर्शीद मेरे !
तुममें मेरी आशा के संग, जीने दो मुझको ।
घने मेघ पश्चिम में छाये, गरज रहे हैं,
टूटी नैया की रस्सी, फंस गई भंवर में;
तुमसे आस बंधी है, उससे ही जीने दो मुझको,
नहीं छीनना मुझसे, उस आशा तन्तु को ।
मुर्शीद मेरे .....

प्यार समान मार्ग दर्शक ना कोई,
सेवक को यह पहुँचा ही देता, मालिक तक;
बस बन जाओ, गुरु जैसे ही, प्यार भरे विद्यार्थी ।
हो माशूक संग तब सब कुछ सुंदर लगता,
कभी न बिछुड़ें रहें साथ ही, बस मन करता;
बीती ग़म की रात, ख़ुशी का दिन उग आया,
बना रहे आनन्द सदा, जो मुझ पर छाया ।

जीवन जल से भरी है नदिया,
प्यासे ! आओ, खींचो पानी;
आत्मा को तर कर लो ।
जल ना दिखे तुम्हें तो,
आत्मिक गुरु समीप जा;
गागर अपनी डाल देना ।
भारीपन ही बतला देगा उसका भरना,
देर न करो, उसी पर निर्भर होगा जीना;
नहीं तो सूख, बिखर जाओगे ।

अरे ओ प्यासे !
जीवन जल से भरी लबालब एक नदी है,
आओ, अंजुलि में पानी ले, पी भी जाओ,
आत्मिक उपवन, पोषण पाकर,
फल-फूलों से भर जायेगा ।
यदि तुम जल को देख न पाओ,
धर्मगुरु से मदद माँग लो,
नेत्रहीन सम फिर पानी में लोटा डालो,
स्वयं जान लोगे, पानी उसमें भर आया ।
बीत रहा है समय औ पानी बहा जा रहा,
पीले अब भी अरे, तृषित ना रह तू अभागा ।

सौ वर्षों तक बड़ी लगन से पूजा की हो,
उससे बढ़ सौ मिनट हैं, जब संतों से भेंट की हो ।

आत्मिक बसन्त रखे सजग सभी को,
दे मित्र शान्त उपचार मृत्यु को,
पत्थर, मोती है जिसे समान,
मोर, कौए संग व्यवहार समान,
चाहूँ मैं उस करूणा मूर्ति को ।
आकार गिरे पर बुद्धि रही,
दोनों की खुशी विपरीत रही;
तब आया शम्स आशीष भंडार ले,
अब भू ही नहीं, गगन भी चमके;
'धन्यवाद', मेरे हाथ जुड़े ।

जिससे भी मिलूँ, यही बात दोहराता जाऊँ,
अपनी निजता 'उसके' सम्मुख ना रख पाऊँ;
उसमें डूबा उस आनन्द को ही, मैं बखाने जाऊँ,
कैसे उसका वर्णन फिर, मैं पूरा कर पाऊँ ?

दीप्त नेत्र, चेहरे को देख,
जब अंतस झुक जाये;
तुम पूर्ण समर्पित हो जाना ।
भर जायेगा भिक्षा-पात्र मोतियों से,
पर, तुम न किसीसे कहना;
मौन, शान्त, आनन्द राशि में ही रम जाना ।

मीठे स्वर में कोई पुकारे, आया कारवां एक मिश्र से,
लाखों ऊँटों पर अद्‌भुत भंडार समेटे ।
आधी रात में, दीपक लेकर, जगा किसीने मुझे कहा-
दोस्त तुम्हारा आया ।
खोल उनींदी आँखें सोचा,
क्या ये सच हो सकता ?
तभी अचानक देखा -
एक जगत इस जग के अंदर, लोटे में इक विस्तृत सागर,
सेवक के भेष में राजा मेरे संग बैठा था;
माली के सीने में उपवन था,
प्रेम के सोच-विचार चक्र बन, संवाद कर रहे थे राजा से;
रखने दो यह क्षण संभाल;
मृत्यु की ओर जाता मैं, जीवन पाऊँ इससे,
महल बनाया मेरा झोंपड़ा, शमशुद्दीन ने आके ।

प्रेमी के हृदय में जग है - और,
प्रेमी के दोस्त में - और
अचंभे विश्लेषित करते, नभ और ।
बुद्धि औ करूणा की सीढ़ी हम चढ़ते,
सीढ़ी तो और बहुत सी हैं;
रात्रि में घूमते हुए, 'क्षमा' का शब्द सुना मैंने ।
दीप जलाया शम्स के जग ने,
बन गया पतिंगा मैं;
ताकि ध्वस्त हो जाऊँ उसमें ।

सागर बिन मछली रह सकता ।
पर, आत्मा मेरी मैं तुमसे एक भेद कहता,
मुश्किल है, सागर सम मछली का मिल पाना ।
सागर जल है धात्री माँ औ मछली रोता बालक
कभी-कभी सागर ही पूछे- क्या चाहे तू बालक ?
तब, मछली राजा बन जाती, सागर मंत्री बन जाता,
अरे, पहेलियों से मैं कब तक यूं ही रहूँ जूझता ?
आया है, मालिक शम्स पृथ्वी को गंधित करता,
पास उसे पा भू का हर पौधा खुल जाता ।
स्वाद शम्स का पाकर भी पहले जैसा ही बना रहूँ,
तो है न लेश आत्मा का मुझ में,
निश्चित ही यह बात कहूँ ।

रूई भरी कानों में जैसे, अंतःकर्ण हुए बहरे,
बाह्य कर्ण सुनते मन इच्छा, चेतना ध्वनि ना सुनने दे ।
होयँ निर्विचार, निर्वासन, बाह्य ध्वनि तब सुनें न कान,
'लौट आओ' की प्रभु ध्वनि ही फिर, करती कानों में गुंजान।
विचारों, वाणी, कर्मों की यात्रा होती है बाहर की,
होती है अंतःयात्रा तो, नभ से भी ऊपर तक की ।
भौतिक तन चढ़ सकता है, पृथ्वी के पेड़-पहाड़ों पर,
यीशू जैसे आत्मिक हों तो ही चल सकते पानी पर ।

स्वच्छ रहा दिल दर्पण तो,
प्रतिबिम्ब अनन्त का पड़ जाता;
है जगत्, समुद्र, स्वर्ग सीमित,
वहाँ रूप न उसका दिख पाता ।
पर, संत मोजेज़ के दिल में वह
अनदेखा प्रतिभासित होता ।

वो आया, जैसे -
जल प्याले में सागर,
माली के रुप में उपवन,
सेवक स्वरूप में राजा,
चहुँ दिसि प्रेम भाव छलका,
मृत तन अंगड़ाई ले उट्ठा,
अदृष्ट रूप मम नैन बसा ।

दिल ! उत्तरदायी न बनोगे,
निज भूलों के कब तक ?
प्रियतम उदार, कृपा बरसाये
जागोगे ना कब तक ?
छोड़ो द्वेष, बनो जीवन्त
वो जो करवाये कर लो,
संतों का संग अब भी करो रे,
प्रभु को समर्पण कर दो ।

लौ में ज्योति, दीये से ही आती,
लौ को देखने वाली दृष्टि, दीये पर भी जाती ।
वर्त्तमान संतों के दियों से, सृष्टा की लौ पकड़ो,
या कि पूर्व संतों की दीपक लौ पर ध्यान धरो ।
हर इक संत मसीहा का है अपना रास्ता,
वास्तव में, पथ एक कोई भी पहुँचा देता ।

प्रेमियों को मिलाके जुदा ना करो,
खुद ही से टूट जाने का ज़ख्म न दो,
जो भावै तुम्हें, ऐ खुदा कर लो वो
किंतु बिछुड़न के दर्दों का तोहफ़ा न दो ।

अत्तर है आत्मा,
सनाई है उसकी दो आँखें;
हम आये दोनों के बाद ।
शमशुद्दीन की शक्ति बिना,
कोई न ले सके चाँद हाथ में;
ना ही बन सकता कोई सागर ।

है अंतहीन पट, दिल मेरा,
उस पर बस, यह ही लिक्खा;
'मुझे छोड़ ना जाओ' ।

मनमानी चाल चलो पर
मुझसे दूर न जाओ;
एक बार मिलकर, वियोग
पीड़ा में न तड़पाओ ।
सौ बार ख़ुशी से मरूँ, यदि
तुव मिलन की आशा हो;
लगे तुझ बिन जीवन ऐसा,
अग्नि में जल रहा हो ।

भोर हुई, क्यों अंतस चहका ?
ठंडी बयार ने उड़ा दिया है,
घूँघट उसका ।

आया बसन्त, भू घाव भरे,
प्राणों में खोज के स्वर उट्ठे;
जिसे देखना चाहा उसके
चिन्ह दृष्टि में मिले ।

संतों के संग रहे तो इक दिन,
बन ही जाओगे तुम संत;
चट्टान हो तो भी फिक्र नहीं,
झरना तुमसे फूटे इक दिन ।

नदी कूल घास वंशी, वेदना सुरों में बोले,
असमय ही क्यों तोड़ दिया, संबंध तंतु को मेरे,
जब से उखडी जड़ से, भटक रही हूँ तब से,
गलित जन्मभूमि ही चाहूँ और न कुछ स्वीकार मुझे;
अपने घर कैसे लौटूँ, कोई राह दिखा दे मुझे !

बिछुड़न के दर्द से चूर मेरा दिल,
ढूँढ़ रहा है कब से;
अपना सा जो कोई मिले तो,
सुकून पाएगा, उससे ।
दिया जलाते हैं माचिस से,
दोनों की लौ दिखती है;
सब कालों के संतों में,
प्रभु ज्योति जगमग करती है ।
हर संत, मसीहा की होती,
अपनी ही इक अलग राह;
चलें किसी भी राह,
प्रभु घर तक वो पहुँचा देती है ।

फल पकें, सुमन रंगीं होवें,
पत्थर भी हीरा बन जाये;
उनके बिन जाने, रवि उनका,
गुरु सम विकास कर जाये ।

वायु

तपायें तो कचरा जल जाता,
पीटें तो चमक आ जाती,
उबालें तो गंदगी सतह पर आती,
फिर, उसे निकाल फैंकना आसां हो जाता;
बेदाग, स्वच्छ चांदी हो जाती ।

है जितना जिसके लिये ज़रूरी,
उतना ही उसको प्रभु देता,
यदि माँगे, फैंके, छीने, झपटे,
विश्वास उसे ना है प्रभु का ।
ईंट बनाने में भी तो
कम ज्यादा पानी लगता;
वैसे ही प्राणी जगत् में भी,
इक वही नियम लागू होता ।

मनुज जाति होती है कच्चे चमड़े जैसी,
सुंदर बनना हो तो वेदना सहनी पड़ती ।
तेज़ाब डाल कर, खूब रगड़ना-घिसना पड़ता,
कोमल, गंधहीन, सुंदर तब चमड़ा बनता ।
शम, दम, नियमादि का पहले पालन कर लो,
जीवन के दुःख प्रभु प्रसाद मान कर सह लो ।
स्वास्थ्य बनायें लक्ष्य तो दवा न कड़वी लगती,
शुद्ध कर रहा प्रभु मानें, वेदना न खलती ।

दिल-दर्पण हो स्वच्छ तभी वह,
रूप-कुरूप का भेद बताये ।
आघातों से यदि दर्पण,
क्रोधित हो जाये;
हो न सकेगा कभी स्वच्छ;
बस मैल नियति बन जाये ।

थोड़ी गर्मी पहुँचाने से फल पक जाते,
धातु पकानी हो तो महत् अलाव जलाते ।
वस्तु जैसी ही होती है, मानव प्रकृति,
ज्ञान हेतु ज़्यादा-कम यत्न ज़रूरत पड़ती ।

वेदना औ भय हैं कसौटी वे जो,
कायर-वीर का भेद बतायें ।
मुश्किल में इक, करे पीठ,
दूजे उसके सम्मुख जायें ।
पहला कहलाता सांसारिक,
दूजे ही आत्मिक कहलायें ।

सुख की तैयारी तुमसे ही करवाता दुःख,
आँधी के वेग सा लगे क्रूर, घर स्वच्छ करे तुव ।
मैल, सडांध को झाड़-बुहार, निकालें दिल से,
रिक्त, स्वच्छ घर होवे तो भर जाता सुख से ।

दिल दर्पण को स्वच्छ करे जो जितना,
जग रहस्य, जान जाये वो उतना ।
भौतिक जग में रवि फैलाता उजियारा,
करता दीपित आत्मिक जग, प्रभु प्यारा ।
दृष्टि, दिमाग दोनों हो खुलें, तब दिखती दुनियाँ,
केवल दिल ही खुला हो, प्रभु डाले गल-बहियाँ ।

आत्मा है धधकता कुंड,
अग्नि से खुश जो,
निज प्रेम ज्वाल से करता
राख, अहम् को ।

आँधी बिना न रेत उड़े,
मथे बिना ना झाग बने;
यदि गहन हो पाये दृष्टि,
तब ही वह दृष्टांत बने ।

पहले आयें भाव-विचार
फिर कर्म करें, फल मिलता,
रखें विचार शुद्ध तो कर्म
सरल, सफल हो जाता,
भेदक दृष्टि से चुनें कर्म
प्रभु हम से यही चाहता ।

जग की कैद के हैं हम कैदी,
बिन सैंध लगाये मिले न छुट्टी ।
यौवन जाये, बुढ़ापा आये,
जो जन्मा है सो मिट जाये;
देखें, पर तन मोह न छोड़ें,
अंतर आत्मा ना सहलायें ।
भाव-कर्म ना बदलें जब तक
मुक्ति ना मिल पाये, तब तक ।

भौतिक प्रकाश मिलता सूरज से,
आत्मिक प्रकाश मिले देव-बिंब से,
दिल-दर्पण को जितना साफ करोगे,
आत्मिक रहस्य उतना उसमें देखोगे ।

दर्पण सम होने पर ही दिल हो पाता है शुद्ध ।
मैल की मोटी-पतली परतों पर ही है आधारित,
कितना समय लगेगा उसको चमकाने में ।

कब तक, निज छाया ही देखे जाओगे ?
उसके प्रकाश की ओर भी दृष्टि घुमाओ ।
दुर्लभ मानव जीवन सफल बनाओ,
सूर्य ताप से बचो न, खो भी जाओ ।

जहाँ सभी चिन्ता करते हों, पद-पैसे की,
कुत्ते जैसे भौंक रहे हों, रक्षा करने घर की,
रहो न वहाँ अब उस घाटी के नीचे,
उठो, पर्वत की ओर मुखातिब होओ;
बहते हैं गीत के झरने, दैवी वायु वहाँ,
धन्यवाद के प्रेम गान मुख से फूटें वहाँ ।

दुःख झाडें, घर साफ करें
कि खुशी आ सके उसमें;
सड़ी-गली पत्तियों को फैंकें,
तभी नई कोंपल आऐं ।
टूटी-फूटी जड़ें निकाल दें,
नई जड़ें तब ही फैलें,
दुःख झकझोर के अहम् गिरा दें,
तब परमात्मा मिल जाँयें ।

संत न पीटें अपना ढ़ोल,
पागलपन की ओढ़ें खोल,
अंतःनयन खुले हों जिनके,
वे ही जानें उनका मोल ।
दृढ़ कदमों से चलो निरंतर,
अपने ही अंतस की ओर;
जान जाओगे सभी राज़
जब भेंटेंगे प्रभु द्वार खोल ।

अभी न सोना,
परिवर्त्तन के चक्रों से,
रात्रि को गुज़रने देना ।
तव मस्तक, शशि का प्रकाश,
दीपक की लौ संग;
हम बैठेंगे ।
इनके प्रकाश में,
जगते रहना;
अभी न सोना ।

'संस्कृति के बंधन की गांठों को
धीमे-धीमे खोलना'
इस सीख पै ध्यान न देना ।
इक वार से गांठें काट, कान में
रूई ठूंस लेना,
जंगली घास पर लेट, स्वयं में
गन्नों को बढ़ने देना ।
नियम, दिनचर्या, कर्त्तव्यों के
जालों में ना फंसना,
ये सब ही कारण हैं, जो
मौन-शांति आने दें ना ।

घर-घर, दर-दर ढूँढ़े ही जाऊँगा तुमको,
कोनों में कब तक छुपे रहोगे;
ना दीखोगे मुझको !

बसे प्रभु अंतस में, मैल दिखने ना दे,
बनो पिघलती बर्फ, धोओ निज को निज से,
तो हटे मैल, मूरत दिख ले ।

स्वच्छ दर्पण है जीवात्मा,
तन-मन की धूल जमी उस पर;
जब तक ना रगड़ें, धोयें, पौंछें, ।
अंतस सौंदर्य, न आये दृष्ट ?

लिखने से पहले धोकर
करते साफ स्लेट को,
दर्द अश्रु से साफ करें दिल,
देख पायें तब प्रभु को ।

जग, तन हित जो करे कमाई,
'खेल' शब्द, सम खुशी न लाए;
आत्म-दर्श हित करे जो मेहनत,
तीनों लोकों से तर जाए;
उससे धन, पद, मान मिले,
इससे प्रभु प्रियतम मिल जाये ।

शायद तुम 'वह' ना हो पाओ,
पर, यदि गहन प्रयत्न करो तो,
बिसरा सकते हो खुद को,
'वह' ही रह जायेगा फिर तो !

प्रभु तक की यात्रा, ना है चंदा की यात्रा,
ये है गन्ने से शक्कर बनने की यात्रा;
करो न तुलना नभ में भाप यात्रा से,
ये है भ्रूण से प्राणी बनने तक की यात्रा ।

थे तुम खनिज, बने फिर पौधा,
पशु-पक्षी बने फिर बने मनुज;
मन-बुद्धि तन के संग बढ़ीं,
भू का क्रम है यह, प्राकृतिक ।
देव-गंधर्व बनोगे अब,
भू छोड़ गगन को मापोगे;
रहे अटकते पिछलों में तो,
विकसित ना हो पाओगे ।
मरना है, परिवर्तित होना,
वापिस उसमें मिल जाओगे;
जब छोड़ें खुदी तब खुदा मिले,
अनुभव से भेद यह जानोगे ।

इक दिन रूप बाहरी खो जायेगा,
आंतरिक तथ्य तो सदा रहेगा ।
प्याले से कब तक खेलोगे,
खोजो, जल तो तभी मिलेगा ।
स्वर्ण किरण फैला भित्ति पर,
अनुपम रंगों का मज़ा ले रहे ?
सतत चमक के स्रोत को ढूँढ़ो,
कण की ही चमक में घुले जा रहे ।

उसे खोजने की वांछा की,
जड़ें जमी हैं, दिल में;
ध्यान न दो निज कमज़ोरी पर,
खोज ही उसकी, लक्ष्य बने ।
खोज से पीछे ना हटना,
खुद ही दाँव पर लग जाना;
चाहे होओ लूले-लंगडे,
उस ओर घिसटते ही जाना ।
गति द्रुत हो या धीमी हो,
अन्त में उसे पा ही लोगे;
पर, मन-बुद्धि कारागृह से
निज आत्मा को आज़ाद करो ।

बादल के आँसू बरसाये बिन,
उपवन ना खिलता;
बालक ना रोये जब तक,
उसे दूध नहीं मिलता ।
नवजात शिशु भी यह जाने,
रोऊँगा तो माँ आयेगी;
जानो, वह माँओं की माँ भी,
बिन रोये दूध ना देवेगी ।

हैं पैर तुम्हारे, क्यों लंगड़ाओ ?
पकड़ है दृढ़, अंगुली क्यों छुपाओ ?
प्रभु ने सीढ़ी रखी तुम्हारे ही अंदर,
छोड़ो आलस, चढ़ पहुँचो रे, उस तक ।

आत्मिक राह सुखाती पहले तन को,
फिर अधिक स्वस्थ कर देती;
कलाकार पहले खंडहर को तोड़े,
फिर सुंदर, कलाकृति बनती ।

तन-मन विटप में लगा हो घुन,
तो खोद जला दो उसे अभी;
हुई देर बहुत यह जीवन रवि,
डूबेगा अस्ताचल में अभी ।

दो कलाकार चीनी, यूनानी राज सभा में आये,
'मैं हूँ बेहतर कलाकार', दोनों ने दाँव लगाये ।
लगाया पर्दा इक कमरे में, राजा ने दो भाग किये,
'ले लो जो चाहे सामान, कलाकृति अपनी पेश करो ।'
चीनी ने ब्रश, रंग लिये, यूनानी ने पॉलिश, कपड़ा,
हुई कलाकृति पूरी तो, राजा को बुलावा भेजा ।
देखी कला जो चीनी की, तो मुग्ध हो गया राजा,
कुछ देर वहाँ ठहरा औ फिर यूनानी हिस्से में आया ।
यूनानी ने तब धीमे से, बीच का परदा हटा दिया,
हो गये नेत्र दोनों विस्फारित, राजा अवाक् रह गया ।
प्रतिबिम्बित थी चीनी रचना, भित्ती के दर्पण में,
चीनी कृति का रंग रूप, फैला था कमरे भर में ।
काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह, को रगड़ हटायें दिल से,
फिर दिल को चमकायें प्रभु के गान, ध्यान से;
तब बहुरूपी प्रभु प्रतिबिम्बित होगा उससे ।

उसे खोजने की इच्छा का
बीज प्रभु ने बोया तुममें,
अब भी खोजो उसे, खो गये
क्यों स्वकमज़ोरी में ?
मुक्त करो आत्मा को,
भौतिकता की जेल से;
प्रयत्न बढ़ाओ, उसे ढूँढ़ने का
अधिकार है सबको ।

इन थोड़े से शेष दिनों में,
भरो आत्म शक्ति पंखों में;
छितराई ना शक्ति तो,
हो हल्के उड़ोगे नभ में ।

कभी देखा होगा तुमने भी
कुली को बोझ उठाते,
वैसा ही है उनका प्रयास,
जो सच को, देख पाते ।
जानें वे आराम मूल में है बोझा,
है खुशी मूल में कड़वा;
अनिच्छा मूल में स्वर्ग छुपा,
इच्छा से घिरा नरक अग्नि का ।

साड़ी

ये चेहरा नहीं आदमी का
दर्द का एक नमूना है;
बहशी कभी औ कभी फरिश्ता,
यही तिलिस्म का होना है ।

केवल मात्र बुरा ऐसा,
जग में कुछ ना होता,
होता है सापेक्ष सदा ही,
बुरा-भला जो दिखता ।
विष है सर्प का प्राण, परंतु
दूजे जन की मृत्यु बनता,
जलचर के लिये जीवन है समुद्र,
पर, थलचर की मृत्यु होता ?
बीज की मृत्यु बने पेड़,
फिर पेड़ बीज पैदा करता ?
संसार बनाता है जन औ
जन भी संसार से बनता ।

बिखराव के दुःख से इन्सां की छवि,
भूत-प्रेत सी दिखलाती;
हिंसक कभी, कभी करूणामय,
छवि निज में गोपन रहती ।

दो फुलवारियों की दुनियाँ,
दोनों ही खूबसूरत
इस जग की गली से एक जनाज़ा निकल रहा है ।
चलो, अब उठें, छोड़ें दुनियाँ,
पानी सम समुद्र में वापिस चलें,
मातम पुरसी से वैवाहिक भोज़ में,
उपवन से माली के मन में,
निज गरिमा की रक्षा करते
पकड़ छोड़ने में ना काँपें ।
निज आत्मा को दर्पण में,
फिर परिवर्तित होने दें,
प्रभु जैसे ही प्रतिबिम्बित हों,
निजता का उपहार उसे दें,
मौन को उजागर होने दें ।
जैसे ही मौन सम्भाषण होगा;
घर की ओर अपनी यात्रा भी;
हो जायेगी आरम्भ ।

मछली ! तुम पानी में ही हो,
वह है तुम्हरा जनक और रक्षक भी;
निज रक्षा हित दूजे की कामना,
क्यों करती हो फिर ?

आदमी बना है जिनके मिश्रित गुण से
मधुमक्खी और सर्प हैं वे ।

है न बुरा कुछ भी जग में,
सापेक्ष सदा सब होता ।
जीवन रक्षा करे कभी विष,
मीठा कभी प्राण हरता ।
मछली कहे - है सागर स्वर्ग,
पशु कहे - समुद्र मार देता ।
बुरा कहने से पहले, इस
दृष्टि से भी देखा होता ।

समुद्र पार धन अर्जित करने जाँयें,
तो जन को भय लगता;
नौका है लघु, पहुँचूँगा या डुबूँगा,
यही द्वन्द मन मथता ।
ऐसा ही होता प्रभु पथ में,
बिन भय विश्वास से जाना;
फूल अनेकों खिल जायेंगे,
हर पग होगा उससे मिलना ।

पानी में नभ के समान ही,
वर्त्तमान दिखता-छुपता;
अभी यहीं था, अभी न कहीं ।

परिभाषित करना चाहें तो,
वर्त्तमान लोपित हो जाता;
चाहें पर, चित्रित कर न सकें,
वह प्रेम समान फिसल जाता ।

क्रोध को देखो जो इकटक,
वह रजकण बन जायेगा;
सर न उठा पायेगा फिर,
कारूण्य, प्रेम छायेगा ।

स्वार्थ बनाता हमको अंधा,
ईर्ष्या ज्ञान को करती धुंधला;
औरों को लगे बुध अज्ञानी सा
पर, उसने दोनों को छोड़ा ।

कानों की गहराई ही, बन जाती है आँख ।
प्रभु शब्द कान में ना अटके तो
दिल भेद वहीं पर वो बस जाता ।

हो सके यदि तो बनो गुलाम,
मालिक ना बनना;
बनो गेंद, बल्ला ना बन,
घावों के साक्षी होना ।

दर्पण जैसा स्वच्छ, रिक्त
जब मन हो जाता;
स्पष्ट स्वात्म दर्शन तब होता ।

नहीं समाता कविता और कल्पना में भी,
वर्त्तमान होता ऐसा ।

क्या है आत्मा या कि चेतना ?
अधिक सजगता जग, जीवन की ।
तब झूठे संतों का चोगा,
डाल न पाता भ्रम में;
झलक रही है आत्मा देखो,
अल्प दृष्टि वाली वृद्धा में ।
रोती-हंसती आसानी से,
प्रेम छलकता रोम-रोम से;
अपने हित निर्णय ले लेती,
पलक झपकते ।

नाम तुम्हारा सुमिरन करना,
नहीं सहायक होता - तुम्हें देखने में,
तव प्रकाश से अंधा हो जाता हूँ मैं ।
तव समीप आने की कामना,
पास मुझे ना ला पाती है;
याद तुम्हारी परदा बन, आ जाती मध्य में ।

कौए की तरह,
जो ना है ठंड में;
वह ही देखा चाहो ?
छोड़ो यह दुर्मति,
नव कोंपल, गुलाब देखो;
पंछी संग गाओ ।
इस मौसम के,
इस क्षण में;
सब प्यार ऊंडेलो ।
बीत गया यह क्षण,
तो फिर से नहीं मिलेगा;
चाहे जितना सिर पटको ।

सुने पुकार पर, आत्मा उड़ ना पाये,
मछली तड़पे, पानी में जा ना पाये,
रजकण समान मिल सबसे, नाच न पाये,
पिंजड़े के बाहर भी न पंख फैलाये,
'ऐसा क्यों' की गुत्थी तब ही सुलझे,
जब वर्त्तमान हो लक्ष्य, सजग जी पाये ।

अनुग्रह मानो वर्त्तमान की गरिमा का,
ना खींचो अपनी ओर,
तीर सम छुट कर दूर चला जायेगा ।

भय है हमको
अनस्तित्व में खो जायेंगे ।
अनस्तित्व डरता है - चोगा
इन्सानों का पा जाऊँगा ।
वह प्यारा ही आनन्द देता,
और सभी कुछ कड़ुवा लगता;
आत्मा है दुःखी 'सार अमृत,
यह जीवन चाख न पाया ।'
सब भौतिकता पर ध्यान धरें,
आत्मिक जल ना पीना चाहें;
पर, अंतस अमिय और अंधियारा,
प्रेमी हैं युगल सनातन ।
दोनों को संग ही रहने दो,
स्पष्ट देखने में उपयोग
रात्रि का कर लो ।

कामना न हो तो संयम करोगे किसका ?
हो न विरोधी तो फिर लड़ना कैसा ?
निज को पीड़ित कर, न बनो सन्यासी
त्याग के अंदर से इच्छा झाँकेगी !
बिन संवेदन हो न गहन अनुभूति,
अलिप्त मौन दृष्टि, इच्छा का छेदन करती ।

प्रभु का जन ऐसा होता है -
बिन पिये शराबी लगता,
बिन खाये तृप्त हो जाता;
आश्चर्यचकित रहता हरदम,
हो रंक भी तो राजा दिखता ।
बिन सोये जागृत ही रहता,
खंडहर में खजाने सा होता;
पंच तत्व से बना न जैसे,
अंतहीन सागर होता ।
बिन बादल मोती बरसाता,
है वो अनेकों नभ सा;
नहीं किताबी पंडित है वह,
सच का ज्ञानी होता ।
ठीक - गलत है उसको सम,
कट्टर, धार्मिक ना होता;
अस्ति-नास्ति से है वो परे,
निज गरिमा में ही जीता ।

ना अर्थ प्रार्थना का है यह, सामने प्रभु के झुके रहो,
हर वक्त, हर जगह, प्रभु दिखें, मन स्थिति बस यह ही हो,
है ईश प्रार्थना धन्यवाद, इक सुर में ही हो दिल दिमाग,
सोयें, जागें, करें काम, आराम, न बिसरे प्रभु की याद ।
जाना जब 'सब ही है प्रभु' तो कर्मकांड सब व्यर्थ हुए,
फिर तो द्वन्दहीन वह प्रभु जन, आत्मिक जग में बूड़ रहे।

यदि ला सको तो चला गया जो,
उसको फिर ले आओ;
कहेगा वो - तुम चलो भी,
मैं आता हूँ पीछे-पीछे,
तो विश्वास नहीं करना,
यही तो कला है उसकी ।
पानी में गांठ लगा देता औ
हवा को बुन देता वह,
तुम कुछ ना सुनना,
उसको लेकर ही आना,
उसमें ही उठना-बैठना,
उसको ही पूरा जीना ।
अनेकों लाल - गुहर हैं
पर, जिसे ढूँढ़ता हूँ मैं,
वर्त्तमान के इसी द्वार से
आयेगा वह,
क्योंकि,
वासस्थान यही है, उसका ।

बनी रहे चेतना सजग
जब वर्त्तमान में,
जन आत्मिक कहलाता ।

मिलती सज़ा, गलत कामों की,
भले काम दें - पुरस्कार;
है शाश्वत नियम यही, करते क्यों,
अंतिम दिन का इन्तज़ार ?
साक्षी बन देखें कार्य तो तत्क्षण,
भले-बुरे के खुल जाँय राज़ ।

आँखों को दृष्टि मिली कि
प्रभु को देख पायें हम ।
(पर) पागल में संत, पत्थर में जल,
दरवेश के चोगे में मोज़ेस;
अंतःदृष्टि उपयोग किये बिन
कैसे देख पायें हम ?

शून्य

सोच, बोल के कर्म वृथा हैं,
रिक्त मन, रोमांचित रहता;
कर्म स्वयं स्फुरित होते,
प्रभु करणीय करा लेता ।

जो ध्वनि, हर आवाज़ और चिल्लाहट से जन्मी है,
केवल वह ही तो ध्वनि है;
अन्य तो उसके आवर्त्तन हैं ।

हर रात गगन में,
खिल जाते हैं अगणित फूल;
देखे जाँयें शून्य हृदय तो
खेलें वहाँ शान्ति के दूत ।

स्याही, शब्दों से ना बनती
सूफी पुस्तक;
रहती खाली, श्वेत बर्फ सा
दिल पृष्ठों पर ।

एक सत्य जो जाना मैंने, वह ही कहता -
आत्मा ने दिया है - खालीपन का मुझको डब्बा ।
हार जीत औ तर्क-गवाही सुनता रहता,
स्वयं विवादों के घेरों में कभी न पड़ता ।
सलादीन सम जो कोई मुझको कभी समझ पाये तो
मैं उसके लिये ही कहता -
है सदा-सदा से खुला हुआ ही
शून्य मौन का रस्ता ।

गीत

सत्यानुभूति मुखरित होती है
रोम-रोम से, न कि शब्दों से ।

कर सके सत्य को सिद्ध ये जग के
तर्क में है सामर्थ्य नहीं;
छिपा है जो प्राणी अंतस में
बाह्य इंद्रियाँ देखें नहीं !
बतलाना चाहे कोई दृष्टा,
उसे देखने का जो रहस्य ।
तो सिलते उसके होंठ, कहे
कैसे, क्या है, ये परम सत्य ।

खाते समय न बोलें, तो यह मज़बूरी है,
कोई और पास ना बोलें किससे, मज़बूरी है,
आत्मा का मौन है सहज, कोई मज़बूरी ना है,
हर रोम सुने-बोले यदि तन-मन की चुप्पी है ।

मौन उतरता तभी कि जब हम,
अनस्तित्व की ओर बढ़ें;
दैवी प्रकाश से दमके चेहरा,
प्रेम भरा हो जब दिल में ।

तर्क बदलते, भू में फूँकते नव प्राण,
नभ में उड़ा दो मुझे, मैं तो हूँ केवल बाण ।
तव प्रीत हेतु प्याला, गिरा मेरा छत से,
उतरो इकट्ठा करो, टुकड़ों को फिर से ।
सभी पूछें है कहाँ, छत ये तुम्हारी,
आती औ जाती आत्मा, जहाँ ये हमारी ।
जहाँ से बसन्त आ, भू घावों को भरता,
मनुज मन में खोज का, स्वर जहाँ से उठता ।
पर हम हैं ऐसे कि खच्चर पै बैठे,
पूछें उसीसे अब कहाँ चलें, कैसे !
सागर में गुम होके, बन जाऊँ वैसा,
मैं चाहूँ, पर तुम कहते, कर लो प्रतीक्षा ।
मापो औ जानो पहले, अनगिन पथों में से,
कोई भी पहुँचा देता, शांत, मौन होने से ।

जो बोलूँ है वही प्रार्थना,
दिल ही शब्दों में झलके,
पूछूं मैं - 'है प्रभु कहाँ तू'
'हूँ यहीं' मौन वह उत्तर दे ।
मौनी ही मौन की भाषा जाने,
रोम-रोम महसूस करे ।

एक प्यार स्पर्श चाहते हैं संपूर्ण प्राण,
आत्मा से तन का स्पर्श ।
सागर जल मोती से कहता -
सीप तोड़ मुझसे मिल लो,
नाच कमलिनी कहे किरण से -
आओ, मुझे भेंट लो,
मैं भी खिड़की खोल चांद से कहूँ -
मुझे स्पर्श करो ।
वो ना आता दरवाजे से,
करें बंद भाषा के द्वार औ
प्यार की खिड़की खोलें,
रोमावलि को कहने दें ।

इंद्रिय रूपी भेड़ चरे,
जब वर्तमान की घास,
रह मौन बताये 'वह' रहस्य,
मौन की दे सौगात ।

समर्पित तो है शक्तिहीन,
यह तर्कशील को दिखता;
पर, निज में सत्यानुभूति हो,
तभी समर्पण होता,
शब्द-घन चीर, मौन रवि उससे,
प्रेम ज्योति फैलाता ।

प्रभु को देखना चाहो तो
अंतस में झाँको;
है वो निकट तम,
क्यों तो बाहर देखो-भागो ।

संगीत मौन में सुना जाय,
तब ही तो वो गहराता है,
भाव-विचार शब्द पूरित मन
यह ना होने देता है ।
क्यों न छोड़ अब शब्दों को,
आँखों से गीतों को सुन लें;
मौन गीत फिर सुनें मौन में,
हम आनन्द मग्न हो लें ।

बहते पानी के पास सोऐं तो ऐसा लगता,
जैसे कोई रहस्य बड़ा वो हमें बताता;
तब एकांतिक मौन समय में साथ साथ ही,
सोना, सुनना और समझना सब हो जाता ।

मौन छलकने लगता है जब -
होते इक ओर वचन, रेशम से चिकने,
दूजी ओर चित्रित करने का,
अतिसाधारण पट होता ।

ले आया मौन तक प्यार तुम्हारा,
रोम-रोम से सुना गीत गहराया;
अब आँखें बोलें, देखें कान,
नाचूँ कृतज्ञ हर्षाया !

शब्द, कार्य हैं - छुपे विचार,
आत्मिक स्थिति वे बतलाते;
स्वीकार करें तो मैल हटे,
प्रभु राह के दर्शन हो जाते ।
पथ रोड़ों पर ध्यान न दे,
इस पथ पर ही चलते जाना;
जग की कैद से मुक्ति चाहो,
तो यह सैंध लगा लेना ।

हैं असार सब वचन, सुनो ना बोलो
करो सतत अभ्यास, मौन बन रह लो;
अजस्र, अमूल्य आनन्द धार,
बहती तुमसे तब, देखो ।

करो प्रतीक्षा होकर मौन,
वही बुलायेगा जब चाहे;
दुई रही ना, सोचे कौन !

उसे खोजने निकला था मैं ।
पाया न क्रॉस में क्रिस्तानों के,
हिन्दू मन्दिर में ना पाया;
प्राचीन पैगोडा में भी तो,
उसका नाम-निशां ना था ।
हीरत औ कान्धार में ढूँढ़ा,
पर्वत औ खाई में भी;
काबा भी गया, वो वहाँ न था ।
संतों, दार्शनिकों से पूछा,
उनने भी देखा ना था ।
तब थक-हार के बैठा मौन,
बाहर से दृष्टि हटाई;
झाँका फिर निज अंतस में,
आँखों में चमक सी छाई;
वहाँ मन्द-मन्द मुस्काता,
बहुरूपी, पड़ा दिखाई ।

जब सिर तक पानी आ जाता,
चाकू हड्डी छेदे जाता;
फिर भी जीवन क्यों न बदलता ?
मैल जलाने वाली अग्नि है चहुँ ओर,
हो मौन रूको, झाँको निज अंतस ओर;
देहरी पर ही हँस दोगे, देख उपवन की कोर ।

गहन मौन शांति में ही तो,
श्वेत पुष्प खिल सकता,
सत्य शिव सुंदर रस तब ही
जिव्हा पर आ पाता ।

मौन हुआ तो समझ ये आया,
बहुत दूर आ गया हूँ घर से;
लगा समझने मौन भाष्य जब,
घर की ओर मुड़ गया तब से ।

अब तो मौन हो जाओ,
इक्के-दुक्के गीत प्रशंसा के गाकर;
स्वयं काव्य बन जाओ ।

अब शुरू हो गया गान
तव मौन उसे गहराई देगा;
मुखरित करना चाहोगे;
तो थम जायेगा ।

भाव-विचार गये तो दिल,
हुआ मौन औ स्वच्छ;
हुये प्रभु उसमें प्रतिबिम्बत,
जाना यही था लक्ष्य ।

चाहूँ, मेरे ये शब्द रूकें
औ मन की ध्वनि शांत होय;
दूध ऊँट का नहीं चाहिये,
मौन का जल ही जाऊँ पिये ।
सजग जागरण की महिमा से,
स्पष्ट हुआ है, कर्त्ता कौन;
जो जाल बुना था शब्दों से,
अब उसे उधेड़ रहा है मौन ।

सम्राट ! हमारे संग रह तुम,
दुःख रेख सुनहरी कर देते;
जहाँ भी जायें, हमको तुम,
उस लोक की चाभी दे देते ।
पकड़ रखना अब हमें मौन में,
ना पड़ें विवादों के घेरों में ।

प्रेम रहस्य न बतला पाऊँ,
सद्यजात सम बोल न पाऊँ ।

शब्द रूके तो हुआ शान्त मन,
तन औ जग बाहर ही रहा;
स्पष्ट हुआ आत्म-दर्शन,
जाना कि खजाना मैं ही था ।

अकल्पित धन बह रहा है तुमसे,
जग तन-मन पर ध्यान न दो;
रहस्यमयी निज हृदय-गुहा में,
एकाकी मौन बस रह लो ।
वचन विनीत हों चाहे कितने
होते हैं अनर्गल ही तो;
अभ्यास योग्य दिखती केवल
इक कला, मौन की है वो ।

तव प्रेम मौन के उस मुकाम तक लाया,
जहाँ निर्विचार में सुने, करे वैसा ही काया ।

प्रेम

मिले प्रेम दर्द, पर दिल पुलके,
खिलें गुल रंगीन आत्मा महके;
प्रीत का धर्म, सभी को बदले
सत् शिव सुन्दर जीवन महके ।

तन की ज़रूरत पूरी की
आत्मा की ओर अब देखो;
जग की जागीर का काम नहीं,
दिल की जागीर बढ़ाओ ।

जब मदद करूँ वो चाहे,
तो हमको रोने देता;
वे आँसूँ आनन्द ले आते,
हास्य हम पर छा जाता ।
पानी बहे जहाँ, वहाँ जीवन लहराये,
जहाँ अश्रु बहें, जुड़ जाये प्रभु से नाता ।

विष औ शहद न चाटो जब तक
गंध, स्वाद कैसे जानोगे ?
प्यार की आग में जले बिना,
खरा है दिल कैसे परखोगे ?

कवि ! छेड़ो तारों को, चिन्गारी भड़का दो,
चुप रहने का समय नहीं है,
बच्चे के चिल्लाने पर ही,
जननी दूध देती है;
चिल्लाओ कवि, अब
चिल्लाने की ही घड़ी है ।

सौ बार भाग्य दुःख देता है,
आखिर में स्वर्ग ले जाता है;
हरा पहले, फिर दया, प्रेम से,
वो आगोश में लेता है ।
जहाँ जलें वेदना दीप वहँ,
प्रेम भरी आत्माऐं जलतीं;
मुख प्रेयसि का दीप समान,
पतिंगे सम वो हो जातीं ।
दिल ! जाओ वहाँ जहाँ आत्माऐं,
कवच तुम्हारा बन जातीं,
दिल में तुम्हें जगह देकर वे,
तुममें प्यार की मय भरतीं ।
आत्मिक पुस्तक खोल तुम्हें,
वे छुपे रहस्य बतायेंगी;
बनालो गगन में अपना घर,
उन आत्माओं के बन संगी ।

ना नींद-धैर्य है तन-मन में,
गाकर ही बिताऊँ रातें;
बासन्ती फूल से चेहरे ने,
लिया चैन छीन, हाथों में ।
संस्कार, बुद्धि जा पड़ीं दूर,
जब दिल-दिमाग में हुआ युद्ध,
सिमट गया जग अपने में,
वो प्यार भाव हो गया चूर ।
प्यार ! ऊँडेलो इतनी मय,
हो मस्त, तृप्ति पा जाऊँ;
चाह न कोई शेष रहे,
ग़म ना जो मौत अभी पाऊँ ।

❖—❖—❖

'बन भिक्षु संत माँगें 'उस' खातिर,
'उस' पर विश्वास नहीं है ?'
'है, तभी तो जो, जितना मिल जाता,
विश्वास, प्रेम 'उस' प्रति दृढ़ करता ।
प्यार न होता बस सहलाना,
द्वेष-रोष भी सहें तो प्यार है ।
बिन शर्त प्रेम बरसे दाता प्रति,
बस केवल संतत्व वही है ।'

❖—❖—❖

प्रीत का दर्द तुम्हारा, जब आनंद बढ़ाये,
आत्मिक वन में कमल, गुलाब सभी खिल जाये ।

❖—❖—❖

करो प्रेम अल्ला से, बंदों से उसके,
छलकने दो प्रेम सुरा, इन लबों से;
तभी वो मिलेगा, सदा जो रहेगा,
जो बाँधा ना दिल वस्तु और विचारों से ।

गंध दोस्त की खुशियाँ देती
ज्योति किरण अचरज में डालती;
फूटे भूतल से अंकुर तब,
जब, जल, वायु अंदर जातीं ।
प्रेयसि दिखे तब ही तो प्रेम लौ,
प्रेमी के दिल में जग सकती;
तभी मिलन की चाह उमगती ।

जला पुराना, निकलो खोल के बाहर,
भू-नभ पर घूमो, उड़ो पंख फैला कर;
पत्थर बनता मोम, पतिंगा बन जाता लौ,
बनो सच्चे इन्सान प्रेममय होकर ।

आनंद और करूणा है प्रेम,
सही-गलत ना जाने प्रेम ।
चरवाहा ना बनो,
भीड़ की भेड़ ही बन लो,
राह दिखाये प्रेम-गुरु,
तुम उस पर चल लो ।

छितराया चहुँ ओर प्रभु ने
अपना प्यार,
झोली जिनने खुली रखी,
हो गये निहाल ।

सागर में ज्वार उठाता प्यार,
पर्वत को रजकण करता प्यार;
भर देता नभ को अनगिन रंगों से प्यार,
प्रस्तर भू दिल को भी पिघला देता प्यार ।

निज प्रकाश छितराया उसने आत्माओं पर,
धन्यभाग वे जिनने अपनी झोली ली भर;
वे भाग्यवान कुछ और न देख प्रभु को देखें,
प्रेम की झोली बिना न हम निज हिस्सा पायें ।

निज शक्तिशाली कर न बढ़ाये प्रेम यदि,
बिन पाँख का पंछी ही बस प्रेमी रह जाये;
कैसे रह पाऊँगा मैं, सजग और जागृत,
यदि प्रकाश प्रेमिका का, मुझे दीख ना पाये ।
केवल प्यार ही आनन्द दे सकता लोगों को,
प्यार मिला था माँ का पहले ही दिन से तो
माँ जैसा निःस्वार्थ प्रेम प्रभु हमें सिखा दो ।

इस हिंसक जग में भी प्रेमी,
ऐसी जगह ढूँढ़ लेते हैं,
हो जाते हैं जहाँ सदा ही,
सत् औ शिव, सुंदर साकार ।

है प्यार का रोग निराला ।
पृथ्वी या स्वर्ग हो कुछ भी,
प्रभु ओर ही करे इशारा;
छवि उसकी दिखे प्रकृति में,
खुले आँख तो हो उजियारा ।

आग को रोशनी में बदल दे मुहब्बत,
दानवी को बना देती ये हूरे ज़न्नत;
मय में बदलती सुहागे को ये ही,
काँटों को बदले गुलाबों में वो ही ।
मुहब्बत बना देती ताँबे को सोना,
मीठा लगे सब ही, कड़वा लगे ना,
लगे राख भी प्रेम में, जैसे गुलशन,
बने कैदखाना सुनहरा सिंहासन ।
दिखे दूत देवों का यम में भी इसको,
भंडार प्रेम का देखे जगत को;
शिशु सम न बतला सकें, इसका अनुभव,
बिना प्रेम बन ना सके, ना रहे भव ।

छितरा है चहुँ ओर प्रेम,
प्रेमिका दिखे ना;
प्रकाशमान है जग उससे,
पर, उसमें वह ना ।

केवल प्यार की ही शक्ति है ऐसी,
जो दुःख को सुख में परिणत करती,
मृत शरीर में प्राण फूँकती ।

अपने ही गुलामों के गुलाम हैं - सब सम्राट,
प्रेमियों के दिल हैं उन के लिये,
जिनने उनसे, दिल लिया बाँध ।
जब हम, प्रभु को प्यारे हैं,
हम भी तो करें प्यार उससे;
बिन प्यार दिये, बनें प्रेम-पात्र,
संबंध तो ऐसे ना बनते ।
जो बालक ना प्यार कर पाये,
शिकवों का अधिकार वो कैसे पाये ?

प्रेम है पत्थर जादू का,
घिसें लोभ पर तो वो त्याग बन जाता ।
तभी तो चाहे स्वर्ग बनूँ पृथ्वी मैं,
इच्छा करता देव कि - 'बन जाऊँ मानव मैं ' ।

ग़म या ख़ुशी से भरा हो दिल तो
तुम्हें देख सकता है क्या ?
वो दिल, इन उधार चीजों के
संग ही, जीता औ मरता ।
हरियाला है प्रेम बगीचा,
अगणित हैं फल-फूल यहाँ;
बहती अजस्र आनन्द वायु,
पतझड, बसन्त फिर रहें कहाँ ?

पिछली रात,
सखा मुझसे मिलने आया था ।
'कहना न किसी से'
कहा, रात्रि से मैंने ।
'पीछे देखो, रवि आ रहा,
मैं भी न रहूँगी'
कहा था उसने ।

तन है क्षणभंगुर पर,
आत्मा सतत, सनातन होती ।
अति भौतिकता पर ना जा कर
अपनाओ पथ आत्मिक,
काम न पद-पैसे आएँगे
प्रेम भाव दे खालिक ।

मन के फूल चढ़ा ना पाया प्रभु को,
यह दुःख जब भारी लगने लगता दिल को;
बहने लगते आँखों से आँसूं अविरल,
होते हैं रीति पूजन से वो बेहतर ।
सौ पूजाओं से बढ़कर है दिल की पूजा,
तभी विरह उसका, आँखों में अश्रु लाता ।

प्रेयसि की भक्ति, विश्वास में जीना,
आनन्द-प्रेम फल दे देता ।
अंतःप्रकाश बढ़ते ही रह कर,
अदृष्ट काल, लोक दिखलाता ।

तन पर न लगाओ कस्तूरी,
उसे दिल पै घिसे ही जाओ;
प्रभु नाम की कस्तूरी जप,
हर रोआँ महकाओ ।

द्वन्द युद्ध हो रहा था मम अंतस में,
हारी प्रकृति दानवी, जीती दैवी अंत में ।
काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह सब,
बदले प्रेम, करूणा में,
नरकाग्नि से जलते तन को
मिली ठंडक, प्रभुवर में ।

प्रभु प्रेमी को छोड़ सभी हैं
बच्चे और बचकाने;
वांछाहीन हो गया जो,
है वही वरिष्ठ, ज्ञानी जानें ।

'प्रभु' को पुकारने पर जो आँसूं आते,
इक मीठा सा दर्द वही दे जाते ।
साकार प्रार्थना तब मैं ही बन जाता,
मेरा संगी-साथी भी, फिर प्रभु पुकारे जाता ।

अंतस में जलाओ प्रेम की अग्नि,
मोम बने पत्थर दिल,
उसमें बसे 'वो' प्रेमी ।

प्यार प्यार के लिये ही हो,
ना कि वस्तु, प्राणी से;
नहीं तो बंध जाओगे ।
अंतःविवेक सबको बतलाता,
क्या लेवें, क्या छोड़ें;
माना, तो मुक्ति पाओगे ।

यदि रोओ जलचक्र समान,
आत्मिक आँगन से,
ताज़ी औषधि उग आयेगी ।

जगत् ही है प्यार का प्रमाण,
बिन प्यार वो कैसे होता ?
तन की खुशी प्यार ना है,
छीन आबरू, शर्म गर्त में;
डालेगी इक दिन वो ।

ठंडे पानी का झरना तुम्हरे अंतस का,
जम गया है या हो गया है रूद्ध;
निराश न होओ मित्र मेरे,
स्थिति को जाँचो होकर चुस्त ।
आत्मा ही है वह कला कि जो
कर सकती दूर सभी अवरोध,
प्यार की धूप से निज को सेको
झरना बहे, हटें अवरोध ।

इन्सां की प्रीत तो है प्रभाव,
प्रभु से प्रीती का ।

वांछा मद पीने वालों के,
नेत्र बन्द हो जाते;
स्पष्ट कुछ नहीं दिखता ।
प्रेम की मय पीने वाला,
भेदक दृष्टि पा जाता;
जग रहस्य खुल जाता ।

बिन प्यार, हमारा अस्तित्व ना रहे
तो बेहतर है
ना तो होगा वो - शर्मनाक ।
प्रेयसि भी ना स्वीकारेगी,
बिना प्यार के तुम को;
हो जाओ प्यार से सराबोर ।
प्यार जिसे भी छूले उसका,
व्यवहार सभी दैवी हो जाता;
लगता है जादू पत्थर का ।
लोभ को छूकर त्याग बनाये,
ज्वार समुद में वो ले आये;
पृथ्वी में कंपन सा छा दे ।
तभी तो चाहे स्वर्ग - 'भू बन जाऊँ मैं '
देव भी सोचे कैसे, मानव बन पाऊँ मैं ?

झलक दिखे उसकी तब ही
निज जंज़ीरें दिखतीं,
विश्वास बढ़े उस पर तब ही
वे तोड़ी जातीं;
हो ज़ुनून उसका, फिर बस
आनन्द लहरें उठतीं ।

प्यार करो ऐसे कि, जुड़ने का बंधन न रहे,
प्रेमी न बीच में आए, जग औ जीवन दोस्त बने ।

ढूँढ़ो न प्यार को ।
करो बस दूर रूकावट उसकी,
छिपी है जो तुम्हरे अन्दर ही;
तुम्हीं खोज सकते हो उसको ।
मोह न करना तुम उसका,
टूटोगे ना, मर जाओगे,
कण-कण भी जो तोड़ा तुमने,
मन-मन प्यार वहाँ पाओगे;
कब, कैसे आया, न जान पाओगे ।

दुःख-सुख परदे दिल-दिमाग पर पड़े,
दिखने ना दें, आनन्द रूप वो,
पर, प्रेम, बसन्त-पतझड़ ना जाने,
सदा-बहार ही रहता वो ।

मृत ना लौटे कभी, प्यार उससे क्या करना,
प्रेम अमर्त्य से करो, है वो नित ताजा होना;
वो है उदार सम्राट, न दिल तुम छोटा करना ।

पूछा था, किसीने - 'क्या है माशूक का होना ?'
कहा मैंने
'मुझसे ना पूछो
बिन माशूक बने न जान पाओगे - उसको,
जब दे वो आवाज़ मौन ध्वनि उसकी सुन लेना ।'

अस्तित्व प्रीत का ही है केवल,
प्रीत बिना है जीना व्यर्थ;
जब प्रीत सुरा में डूबोगे,
प्रेयसि मिलन में दीखे अर्थ ।

ऐ दिल ! जब तक देखोगे फर्क,
ख़ुशी और ग़म में;
टूटते रहोगे तब तक ।
है तव चाह मिलन प्रेयसि से,
पर उसकी चाह अलग है;
वो चाहे, बस तुम अचाह हो जाओ ।
वांछा की मृत्यु है - प्रेमी का जीवन,
प्रेयसि दिल तब ही जीत पाओगे;
जब निज दिल को बिसरा दोगे ।

चाह नहीं कुछ मुझको,
तेरी इस दुनियाँ से;
प्रेयसि बसी है दिल में,
आनन्द झर रहा उससे ।

प्यार मानवी हो कि दैवी,
'उस' तक वो पहुँचा ही देगा,
उठाओ सर देखो चहुँ ओर,
नज़ारा उसका ही दीखेगा ।

प्रेयसि को ढूँढ़ने, कहीं न जाऊँ मैं,
वो बैठी है मेरे ही अंतस में ।

जब तक द्वैत भाव ना छूटे,
तब तक दो दीखेंगे ही;
प्यार में जब तक है दूजा,
काबे में मूर्ति रहेगी ही ।

है मेरी आत्मा अग्नि अलाव
वह अग्नि से ही खुश है;
प्यार भी है अग्नि अलाव,
अहम् जलती लकडी है ।
जब दर्द प्यार का खुशी बढ़ाये,
आत्मोद्यान फूलों से नहाये ।

देवदूत ने दोस्त बनाया नभ को जब से,
पंछी सम उड़ रहा गगन में वो तब ही से;
जब लक्ष्य बनाया हमने प्रेयसि का घर,
पहुँच जायेंगे इक दिन ऊपर, उस तक ।

मेरे पागल प्रेम ! तुम्हारी ही जय-जय हो !
मेरी सब बीमारी के तुम ही इलाज हो,
मेरे अहम्, दिखावे के तुम ही मारक हो;
तुम ही हो मेरी दुनियाँ और देव तुम्हीं हो ।

प्रेम समुद उमड़ा ही जा रहा है मुझमें,
क्या उसे रोक अब करूँ प्रतीक्षा;
तव शब्दादेश की मैं ?

शहीद बना देते हैं मुझको, मेरे गीत ।
अहम्, द्वन्द, तन-मन की वासना,
चूर-चूर हो जाती उनसे;
सत्चित आनन्द झरने लगता,
मिल जाता है मीत ।

अब जब मिलन हो गया पूरा,
दिल में छुपा लो प्रेम का हीरा;
शर्मीली बालिका सम तुम फिर,
धीमे-धीमे बतिया लो ।

देवे न वासना गौरव, पर ले लेती इज्ज़त,
गौरव देता प्रेम औ करता तन-मन स्वस्थ ।

हितकारी प्रेम को आशीष दो,
वो वैद्य है, हर बीमारी का;
दर्द दवा है - हर वेदना औ दुःख का ।

जब प्यार की लौ हो, सजग और निष्कंपित,
हर क्षण प्रकाश से, फल-फूलों से भरती ।

सर्व-स्वीकार

शंख, सीप, मोती, बादल,
खारे पानी से ही बनते,
जो मिले को खुशी से स्वीकारें,
वे मणि-माणिक बनकर चमके ।

निर्माता को ही तो बस,
अधिकार है उसे मिटाने का;
कलाकार वह चाहे तो,
वैसा ही बनाये या दूजा ।
जग को बनाने वाला करता
अपनी कला कोई जब खंड;
निराश न हो, विश्वास करो,
कोई और कृति ले रही जन्म ।

प्रभु प्रेम, कृपा चाहें सब ही,
याचक न क्रोध के कोई भी;
पर, प्रभु के ढ़ंग निराले हैं,
कृपा-क्रोध वहाँ पूरक हैं ।
प्रेम क्रोध में, क्रोध प्रेम में,
छुपा जो देखें, वे ही भक्त हैं;
ना माँगे, ना करें शिकायत,
वे ही प्रेमी-ज्ञानी हैं ।

जितना पीटें पोरक्युपाइन को हम,
उतना ही वह हो जाता बड़ा व मोटा;
श्रद्धालु की आत्मा भी है उस जैसी,
दुःख मात्रा के संग शक्ति भी बढ़ती,
संतों को शायद इस कारण,
प्रभु अधिकाधिक दुःख देता ।

पंछी जैसे चोंच मारना,
कभी उठाना, कभी गिराना,
होती नहीं प्रार्थना ।
वह तो है - अंडे सम सेना,
अंतस के इस भाव को, कि
मेरे किये नहीं कुछ होना ।

'प्रभु देकर दुःख-दर्द, करें दिल मेरा छलनी,'
शिकवा साधारण जन करता;
'दुःख से मैल हटाया, तन-मन चमकाया,
शुक्रिया प्रभु,' प्रेमी कहता ।

अश्रु बरसें तो समझो, प्रभु मदद कर रहा,
काली रात के बाद सवेरा आ जायेगा ।
पानी बहता जहाँ, वहाँ बगिया लहराती,
अश्रु बहें तो प्रभु करूणा शांतानंद लाती ।

चमके प्रकाश प्रेमिका का जब
हम कहते - ऐसा ही हो ।
जग विश्वास पै शंका बढ़ती
हम कहते - ऐसा ही हो ।
तेरे क्रोध के झूठे दिखावे
औ फिर मीठी बातों से,
जग अच्छा लगता है तब
हम कहते - ऐसा ही हो ।
जा रहा आज, आ रहा है कल,
खुशी ने हरा दिये दुःख पल;
अंधेरे को भेदे प्रकाश,
हम कहते - ऐसा ही हो ।

ऐ दिल ! अतर्क्य हो तुम कितने !
पहले तो करते प्रेम औ फिर,
निज जीवन की चिंता करते;
'बंधा प्रीति बंधन में' कह,
परवाह लोक-मत की करते ।
तुम नहीं जानते, क्या है प्यार ?
यह तो है स्वीकार भाव देना ही देना,
लेशमात्र भी ना होती पाने की कामना;
ये दो समानांतर रेखाऐं, कभी न जाने मिलना ।

पूर्ण समर्पित भाव में हों तो,
दुःख-सुख कुछ ना रहते;
भक्त और ज्ञानी दोनों ही,
अंत में इक हो जाते ।
'तूने दिया, शुक्र है तेरा,'
'तूने लिया चीज़ थी तेरी'
अंतरतम के यही भाव,
संतोष-शान्ति दे जाते ।

है कड़वी क्रूरता तुम्हारी,
पर, मोती मुझे बना देती;
सागर के कटु थपेड़ों से ही,
बनें सीप औ मोती ।

प्रभु देता तन-मन को हमारे,
दुःख-दर्द, गरीबी, बीमारी,
बिन शिकवा गहें प्रसाद समझ,
आत्मा की दिखे तब जागीरी ।

दूर न होना उससे, पलभर
दूरी विनाश को लाती है;
हर हाल में उसके साथ रहो,
नज़दीकी एक कर देती है ।

तीव्र प्रकाश प्रेमिका का, नेत्र बंद करता,
नेत्र बंद होने दो ।
विश्वास के प्रति संदेह बढ़ा ही जाता,
उसे बढ़ने दो ।
ईर्ष्या, द्वेष, झूठ, हिंसा से बदल रहा माहौल,
उसे मीठा होने दो ।
अब दुनियाँ लगती वासस्थान रूप-रंगों का,
उत्सव रोज़ मनालो ।
ढ़ल गई रैन, हो गई भोर, दुःख हारा,
खुशी चहकने दो ।
भेद हर कोना, किया सूर्य ने उसे प्रकाशित,
कण-कण जगमग होने दो ।

सम्राट संग है जानो, जब
दुःख रेख सुनहरी हो जाती ।
सब लोक-लोग अपने लगते,
जिव्हा भी मूक तब हो जाती ।
द्वन्दों की स्थिति ना रहती,
आनन्द-धार बहती जाती ।

इस मिट्टी-पानी के तन में,
हर सांस प्रभु की जानें, जब;
तोनों लोकों में उड़ पाऐं;
पंछी सम पर फैला तब ।

अरे ओ आत्मिक पंछी ।
केवल सुनो न शब्द बुद्धों के, पी भी जाओ,
रग-रग में फिर उनको, संचारित होने दो ।
लक्ष रवि सम प्रभु तेज, ना झुलसा देवे तुमको,
इस लिये किया है मेघ ओट में, उसने निज को।
सतत प्रभु की याद से बादल छंट जायेंगे,
देख उन्हें तन-मन भी, ठंडक पा जायेंगे ।

स्वच्छ दर्पण सा होना है,
'ना कुछ' हो जाना;
निज पुरस्कार सा उसको लाओ ।

यदि मुक्ति चाहो, दुःखद जेल से,
प्रेयसि से मुख ना मोड़ो;
श्रद्धा से झुको, पास आ जाओ ।

शांत स्थिति में ही श्वेत पुष्प खिलता है,
'वह' है कर्ता, निज को श्वेत पुष्प बनने दो ।

ना होने का अनुभव जब गहराये,
सोना-जगना दोनों संग-संग होये,
सार तत्त्व है यही रहस्य कहाये ।

प्रभु जैसा मुझे बनाना चाहे,
मैं वैसा ही बन जाता ।
यदि प्याला मुझे बनाये तो
पीने के काम आ जाता,
भाला मुझे बनाये तो
वो कहे जिसे, छेद देता ।
बनाये फव्वारा तो पानी फैलाता,
अग्नि बनाये तो गर्मी दे देता ।
वर्षा बन कर खेत उगाता,
बनूँ तीर तो तन को छेदता ।
सर्प बनूँ तो ज़हर उगलता,
बनूँ दोस्त तो मिल-जुल रहता ।
हूँ मैं लेखनी उसके हाथ की,
जैसा वो लिखाये, मैं लिख देता ।

समर्पण

आवाज़ सुनाई दी भिक्षु को -
'पास आ जाओ, जरूरत है तुम्हारी, दानी को ।'
सुंदरता, दर्पण समीप हो, तब ही जानें,
दानवीरता भी समीपता से पहचानें ।
'दोनों हाथ खुले रखकर, स्रोत समीप जाना'
कहा खुदा ने पैगंबर से - 'इसे ध्यान रखना -
झोली खाली हो तब ही तो दानी भर पाता है,
आत्मिक हमाम में केवल, निर्वस्त्र नहा पाता है ।'

दृष्टि जमाये रहो ज्योति पर,
दीयों के रंग-रूप ना तोलो;
दिखे न तब भिन्नता दियों की,
ज्योति के संग, मिल कर डोलो ।

ओ खुशियों के सागर,
मुझ में बस जाओ;
तुमने ही खुशी दी दुनियाँ को,
'धन्यवाद' कहती भू, नभ को ।

'प्रतिदान में लूँगा प्यार, यदि चाहो
तुम मुझसे प्यार'
सुन, दौड़ा प्राण भेंटने को कह,
'मुझको है स्वीकार ।'

'मैं ना हूँ' की अनुभूति ही है आत्मिक पथ
प्रेमभाव ही ले जाता है उस तक ।

प्रभु की भक्ति करते दोनों -
इक पूजा की आड़ में,
धन, पद, शक्ति बढ़ाना चाहे;
दूजा सिर्फ प्रभु हित
पूजन करे, संग ही चाहे ।
वांछा के जाल में एक फंसा,
दूजे ने समर्पण पूर्ण किया;
हों बंद द्वार, पहले के लिये,
दूजे से प्रभु आ, गले मिला ।

प्रभु से प्यार करते हो तो
खुद को बिसरा दो;
नख से सिर तक अपने में,
उसको बसने दो ।

कर संभाल पहले उसने ललचाया,
फिर दे दर्द मुझे उसने तड़पाया;
जब शतरंज में हारा उससे,
तब ही उसे जीत पाया ।

जब दिल कहे ये गलत काम है,
हट जाना तुम उससे,
समझाये उलट दिमाग किंतु,
सहमत ना होना उससे ।
कभी दिमाग की मान चल दिये
गलत राह पर,
फिर, पछताऐ, रोये तो
आ जाना, लौट सही पर ।
पछतावे में झुलस, निकलते
जब आँसूं आँखों से;
तभी फूट पाते हैं अंकुर,
प्रभु प्रीत बीजों से ।
प्रेम-बगीचा फिर कोई,
गलती ना करने देगा;
रहा समर्पण यदि पूरा,
साहस, आनन्द बरसेगा ।

प्रियतम तो है शेर और हम लंगड़े हिरण,
क्या है हाथ हमारे ?
है वही प्राणदाता, रक्षक, करें मनुहार उसी की,
वह ही लेय उबारे ।

प्रेम-कला लगती है शहीदी सी मुझको,
फिर भी श्रद्धालु सम चाहूँ मैं इसको ।
प्रेयसि ने कहा - 'प्यार के योग्य न हो तुम मेरे,
कोई न मेरा साथ पाये, बिन इन्द्रिय छोड़े' ।
इंद्रिय द्वार रूध्द कर, पागल सम जब आया,
बोली वो - 'मदमस्त हुए बिन कोई प्रवेश न पाया' ।
मस्ती में झूम, खुशियों से भर कर जब मैं लौटा,
'बने न योगी अब तक, मन को दिया न झटका' ?
तब निज को ही काट, प्रेमिका सम्मुख डाला,
'लोगों को बतलाना चाहो, पूजा-स्थल द्वारा ?
मोमबत्ती सम होवे अब व्यवहार तुम्हारा'
बन गया धूम्र तब मैं, अपने को, चहुँ ओर बिखराया।

'प्रेयसि ! तव साथ मिले कैसे ?'
'इंद्रिय विजय करो पहले ।'
कर आया इंद्रिय विजय तो बोली -
'मदहोशी में नहीं पगे ?'
हुआ प्रेम पागल तो बोली -
'पर से अभी तक हो लिपटे ।'
भूला उसे, पास आ बोली -
'अब, स्व को भी मिटने दे'
बुझा खुदी का दीपक पाया,
विस्तृत जग में एक बसे ।

बिना भाव-अनुभूति इत-उत,
धूल के संग थिरकते रहना,
नृत्य नहीं है ।
दोनों जग से परे, खुले नभ में ही उड़ना
जीवन दाँव लगा स्वयं नृत्य बन जाना
ही तो नृत्य है ।

यदि उसे ढूँढ़, उस संग ही रहना चाहो,
तो अनस्तित्व की ओर रूख करो;
वह जगह है खरी कमाई की,
उससे ना भागो ।
अस्तित्व जानता है केवल लेना ही लेना,
अनस्तित्व के हाथ खुले, यह ही है देना ।

मुझ नाचीज़ को बहुत दिये,
तूने सुख औ लम्बा जीवन;
कर रहा पाप सत्तर वर्षों से,
कभी न लिया वापिस इक क्षण ।
कुछ न कमाई की थी, पर
अब आज बना तेरा मेहमान;
आकंठ भरा दुःख और शर्म से,
उपहार में दूँ बस गीतगान ।

कर रहा प्रतीक्षा मैं कब से,
मुझे तीर बनाकर छोड़ो;
अपने ही धनुष की प्रत्यंचा से ।

मैं तो हूँ रवि का गुलाम, उसके लिये ही बोलूँ,
जब ना हूँ रात्रि का पूजक, तो सपने क्यों पालूँ ?

दिल मेरा बन गया लेखनी,
प्रेयसि के हाथों में, अब;
लिख सकती वो अंतिम अक्षर
आज, और प्रथमाक्षर कल ।
छीले, काटे, रंग-रूप दे,
दिल की लेखनी को वो अब,
समझ गई लेखनी कि वो है,
चालक, मैं मशीन हूँ बस ।

प्रभु जैसा मुझे बनाता,
मैं, वैसा ही बन जाता,
जल-अग्नि, मित्र-शत्रु, विष-अमृत,
पशु-पक्षी या कि पेड़-पौधा ।
भला-बुरा या ठीक-गलत,
जो चाहे करवाना, कर देता;
लेखनी हूँ उसके हाथों की,
जब जैसा चलाये चलता ।

परिचारिका

इन्सानी गुण हैं - प्यार और कोमलता,
पशु के गुण हैं क्रोध और कामुकता;
औरत है प्रभु किरण, न है जग प्रेयसि,
है सर्जक वह, कोई ना उसका रचेता ।

प्रभु हंता में अहम् खो गया मेरा,
बन गया मैं पग रज उसकी, रहा न इकला ।
चरण चिन्ह अंकित हैं उसके, मेरी रज में,
धन्यभाग हूँ सुख स्पर्श का पाया मैंने ।

मध्य रात्रि है, पर
तव मस्तक, चमक रहा है
भोर समान ।
नृत्य करते तुम मेरी ओर
चले आते हो ।
एक-एक कर अंधियारे की
पर्त हटा देते हो ।
ईर्ष्या विगलित होने दो ।

हों न प्राण तो तन बोलेगा कैसे ?
प्राण न हों उत्सुक तो
तन, हो उत्सुक कैसे ?

मेरी दुकान, झोंपड़ी औ अब,
दिल भी तोड़ दिया उसने;
फिर भी मुँह ना फेरूँ उससे,
जीवन प्राण दिये जिसने ।
प्यार के इस पागलपन से ही,
चिंतित, परेशान हूँ मैं;
फाड़ दो मेरा लज्जा पर्दा,
रहस्य देख पाऊँ मैं ।
आत्मदमित, भयभीत रहूँ क्यों
चोगे में सिली झालर सा;
तोड़ूँ निज बंधन का धागा,
पाऊँ आनन्द मिलन का ।

है अधिकार तोड़ने का उसको ही
जो पुनः जोड़ सकता हो,
वही उधेड़े जो कि पुनः
उसको सिल सकता हो ।
बेचे वही, जो उससे अच्छा,
बदले में ले आये,
बना सके जो महल वही,
खंडहर उसको होने दे ।
जोड़े जब टूटे को वही
तो कैसे कहें कि तोड़ा,
वास्तव में जोड़ना है वह ही ।

ना जाओ, हूँ दोस्त तुम्हारा, कहा था मैंने,
जग है मृग-मरीचिका औ हूँ प्राणों का झरना मैं ।
गुस्से में भी छोड़ गये तो लौट आओगे फिर से,
लगें हजारों वर्ष, पहुँच मुझ तक ही लक्ष्य हों पूरे ।
संतुष्ट न होओ जग रूपों से, मैं संतोष तुम्हारा,
मैं सागर, तुम छोटी मछली, काम न आये किनारा ।
क्यों उड़ते पिंजरे की ओर, तुम मेरे पास आ जाओ,
तव उड़न शक्ति है मुझसे ही, क्यों न भरोसा लाओ ?
लूट तुम्हें वे छोड़ जायेंगे पथ में, दीन बना के,
मुझमें मिलेगी प्रेम की ऊष्मा, निज विश्वास बढ़ा के।
जब तक न भुला दें तुम्हें कि मैं हूँ स्रोत शांति-आनंद का,
लगाये जायेंगे वे लांछन, तव चरित्र करें मैला ।
क्यों तुम पूछे ही जाते, चलाता हूँ जग मैं कैसे,
ना है कोई स्रोत, पैमाना, चलता जग धूरी पै ।
तव दिल-दीपक का निर्देशन ही तो सच्ची राह बताता,
दिखें यदि प्रभु वहाँ तो तत्क्षण ही तिलिस्म खुल जाता।

हम स्वस्थ हों कि हों पागल ।
साक़ी औ प्याले का ही हो सुरूर हम को ।
उसके शब्द नियम ही हों हमरे सिर माथे,
खुशी-खुशी उन हाथों में, अपनी डोर थमा दें ।
दिली दोस्त की सेवा में करें प्राण न्यौछावर,
केवल इतनी सी ही तो, है चाह हमारी, प्रभुवर ।

मदद माँगने वालों को, सही राह दिखलाओ,
तुम्हें चाहने वालों को;
गुमराह नहीं होने दो ।
विरह तुम्हारा कड़वा लगता,
भ्रामक स्थिति में मन रहता,
भौतिक जग, आत्मिक शक्ति हर लेता ।
तुम बिन कैसे कर पायें रक्षा आत्मा की,
प्रेयसि वियोग में खोई यह आत्मा दुखियारी;
इसे मृतक ही जानो ।
तुम ही तो निर्दोष, पूर्ण, सक्षम हो,
अनस्तित्व, अस्तित्व सभी के;
जीवन-दाता हो,
कर बढ़ा, सहारा दे दो ।

वंशी सम रोने को बाध्य किया,
तुमने ही मुझको;
तानपुरे के तारों सम,
छेड़ सकूँ रागिनी मधुर;
अब इतनी खुशी दे दो ।
थाप सम देते मुझे थपेड़े,
ध्वनि-ताल संगम तुम करते;
हैं एक ही वे !
क्या अलग-अलग दिखला सकते हो,
तुम मुझ को ?

पागलों से तेरे, मिल के बंध जायें हम,
पूरे आज़ाद होने का, क्षण आ गया;
तोड आत्मा के बंधन, करें भस्म घर,
दौड निकलें गली में, समय आ गया ।
द्राक्ष मर के बने मय, पी हम मस्त हों,
पिघले चट्टां बने मोम, जग रौऽऽशन हों;
चोला पहले का छोडें, तभी नव बनें,
मैं को मारें, बने इन्सां, क्षण आ गया ।
प्रेम दर्पण के पास ही हम हैं खड़े,
निज को परखें ही जायें, खज़ाना दिखे,
कैदख़ाने की चाभी हो तुम, देखा जब,
हम बने छेद, उडने का क्षण आ गया ।

देवदूत से भी बढ़कर,
उनसे भी आगे जायेंगे;
अंतिम लक्ष्य वो स्वर्ग हमारा,
रहे जहाँ प्रेयसि हमारी;
वहाँ पहुँच जायेंगे ।

प्रभु प्रेमी के लिये प्रभु ही स्रोत है, दुःख-सुख सबका,
उसकी वांछा ही फल लाती, व्यर्थ और सब इच्छा ।
प्रभु प्रेम की लपट जला देती है व्यर्थ वांछाऐं,
वो तलवार की धार काट दे, हों ना जो प्रभु राहें ।
एक वही है सतत सनातन, बाकी सब खो जायेगा।

हूँ मैं चकित पृथ्वी, और तुम हो मेरे आकाश,
मचा रहे हो क्यों यों मेरे दिल में हलचल ?
मुझ प्यासी पृथ्वी के होंठ फटे हैं, पानी ला दो,
तृप्त होऊँ जो, भर दूँगी तब, फूलों से आंचल ।
भू कैसे जाने, तुमने क्या बोया, उसके दिल में,
तुमने ही गर्भाधान किया था, तुम्हीं बनोगे संबल ।

जब आँख से आँख मिले,
होय मौन सम्भाषण;
है जीवन्त वही क्षण ।
इकले या कि भीड़ में,
तुमको जब-जब देखूँ;
मैं बस रोये जाऊँ ।
बेरूखी, व्यंग्य के साधन से (तुम),
आँसूँ ला मेरा अहम् गलाते;
आत्म-तत्त्व विकसित कर देते ।
मस्त न होता तुम्हें देख,
आश्चर्य चकित हो जाता;
फिर-फिर सब ओर तु ही दिखता ।

प्रभु तिलिस्म का दरवाज़ा,
'मैं', 'हम' कहने से नहीं खुलेगा;
डूबोगे जब पूरा उसमें,
'तू ही तू' सब ओर दिखेगा ।

प्रभु !
गुरु है बहुत कृपालु पर,
तुमसे तुलना ना हो सकती;
तर्क-मस्तिष्क दिया तुमने,
उसने तो बस पगड़ी दी ।
चोगा उसने पहनाया पर,
तुमने यह व्यक्तित्व दिया;
धन-मान दिया उसने पर, तोलूँ
दिल का तराजू, तुमने दिया ।
उसने खच्चर दिया, चढ़ूँ
उस पर, बुद्धि दी तुमने ही;
दीपक गुरु ने दिया परंतु,
दृष्टिदाता तो हो तुम ही ।
तन को संभाला उसने पर,
प्राणों का हार दिया तुमने;
उसने आत्मा का पता दिया,
रचाया आत्मिक जग तुमने ।

ओ अचिन्ह ज्ञानी हम तुमको कहाँ पै ढूँढ़ें ?
देवदूत भी यह रहस्य ना जानें ।
नर्क-स्वर्ग के दुःख-सुख की,
है चाह नहीं हममें;
हटा दो बस अपना घूँघट,
कि देख पायें हम तुम्हें ।

ओ रे ! सबकी सुनने वाले, सुनो हमारी,
सही राह मुझको बतलाओ;
हों न पाऊँ दिग्भ्रमित और अब,
निज प्रेमी से ना बिलगाओ ।
विरह तुम्हारा कड़वा लगता,
भ्रामक स्थिति में मन रहता;
तन-मन शक्ति जग हर लेता,
कौन करे आत्मा की रक्षा ?
बिन प्रेयसि आत्मा दुःखियारी,
मिलन बिना जीवन से हारी;
दे झिड़की अब मुझ गुलाम को,
अपनी ओर मुखातिब कर लो ।
सूर्य, चन्द्र, नभ, सागर खाली,
कहूँ यदि तो झूठ लगेगा,
तुम्हीं डालते प्राण, चलाते उनको,
है केवल अस्तित्व तुम्हारा ।

चित्रकार प्रभु, चित्र बनाता रहता,
कलाकार, छुट्टी पल भर ना लेता ।
कभी बनाता, कभी मिटाता,
क्रोध हटा, करूणा लिख देता ।
दिन-रात विचारों से हमको
भरता, खाली कर देता;
प्रभु चित्र बनाता रहता ।

मिलन है जल-पथ
नेत्रों में चमक
सीने में रूह ।
हृदय गुहा में,
प्रेमी दाँव लगाते
जो हारें वहीं रह जाते ।
जग की चाल न चलो,
बदल लो भेष औ
दिल को खुला रखो ।
प्रेम की परिभाषा में ना,
बस मुझमें डूब,
जानो उसको ।
जो पतझड़ सूँघ, चाहा बसंत,
तो सिंह, गुलाब सम,
राजा बन जाओगे ।
ऊसर भू उपजाऊ बने
बहरें सुनें, मर्त्य जीयें,
भ्रमित मन देखे राह ।
यदि छोड़ें जीवन की पकड़,
खूँ कतरा बुद्धि पा जाये;
प्राणों में चमक, शक्ति आ जाये ।

दिल में रक्खा तुम्हें तो मेरा अहम् बढ़ेगा,
हंता का रूप ना दूँगा तुमको,
आँखों में रक्खा तो खटकोगे काँटे सम,
काँटा भी नहीं बनाऊँगा मैं तुमको;
रक्खूँगा निज श्वासों पर ही तुमको मैं,
तब जीवन-प्राण मेरे तुम बन जाओगे ।

सब पथिकों को जंजीरों में बाँध,
प्रभु ही खींच रहा है ।
अज्ञानी तो खिंचे जा रहे हैं बेमन से,
दैवी रहस्य के ज्ञानी खुद ही खिंचे जा रहे ।
पहले से 'वो' कहे 'न हो इच्छा फिर भी आ जाओ',
दूजे से कहे - 'जब इच्छा है तो आ ही जाओ' ।
शिशु समान, पहला तो जाता मां समीप दूध हेतु,
दूजा जाता माँ समीप कि बंधा हुआ है दिल सेतु ।
शिशु को न ज्ञान है माता का, बस उदरपूर्ति ही वो चाहे,
दूजा ना है तन का भूखा, माँ में मन आस्था लाये ।
कुछ पाने के खातिर, इक तो प्रभु को चाहे,
दूजे के हैं सर्वस्व प्रभु, कुछ और न चाहे ।
कारण कुछ भी बने, खोज होती है,
स्रोत से ही आरम्भ,
दिल का रहवासी ही दिल के
बंध तुड़ाने में सक्षम ।

वह कारीगर रचे जा रहा है यह दुनियाँ,
चाहें फिर भी देख न पायें, उसकी कीमिया,
उसकी रचना, ओझल रखती हमसे उसको,
भेदें रचना तभी देख पायेंगे उसको ।
उसे छोड़ कर कहीं, कभी भी वो ना जाता,
केवल एक वही तो कार्यक्षेत्र है उसका !

रवि की शक्ति है महान ।
गुण-रूप वस्तुओं का बदले
पत्थर को मणि-माणिक कर दे;
प्राण गर्भ में डाले वह ही,
राहु ग्रसे, ना हो हलकान ।
सब जीव-जंतु उस पर आधारित,
कभी न होता है वह, विचलित,
आराम करे ना ही अभिमान,
तभी, रवि शक्ति है महान् ।

यदि हैं हम वंशी, स्वर है तुम्हारा,
हमारे पर्वत में, प्रतिध्वनि स्वर तुमसे आता ।
तुम हो खिलाड़ी, हम शतरंज के मोहरे,
है तुम पर निर्भर, हम हारे या जीते ।
झंडों में तस्वीरें बना करती हैं,
तुम्हरी वायु जिसे चाहे फहराती है ।

फल-फूलों की बगिया में,
इक ध्यान मग्न सूफी बैठा था ।
पूछा इक ने -
प्रभु के ही तो चिन्ह हैं, ये सब
उनका ही ध्यान क्यों ना करते ?
प्रत्युत्तर में बोला सूफी -
अंतस में जो बाग खिला है,
हैं ये सब उसकी छाया;
ये हिलें, मिटें जल छाया सम
पर, अंतः कानन ना मिटता,
आनन्द वहाँ अक्षुण्ण रहता ।

जंगली घास भी लहरा कर,
करती विरहा की शिकायत ।

मेरी प्रीत सुरा से खुश हो जाओ,
ओ वैद्य ! सभी आजारों के,
है भिन्न सभी धर्मो से प्रीत का धर्म,
प्रेमी का खुदा है प्रेम, नहीं कोई अन्य ।

अद्वैत

रवि प्रकाश में दीप रोशनी
खोती ना, मिल इक हो जाती;
परमात्मा से मिल आत्मा भी,
अलग कोई अस्तित्व न रखती ।

कहो साथियो मुझको, मैं क्या करूँ कि,
स्वयं को ही अब तक ना पहचान पाया ।
न ईसाई हूँ मैं, नहीं हूँ यहूदी,
गबर भी नहीं, निज को मुस्लिम न पाया ।
ना पूरब, ना पश्चिम, ना पृथ्वी, ना बादल,
ना पाताल, ना तारों से ही मैं आया ।
ना अग्नि, ना वायु, ना जल, ना ही आकाश,
न पुरुष, न प्रकृति का ही हूँ, मैं जाया ।
ना भारत, ना चीन, ना ईराक, ईरान,
बल्गेरिया, सिन्थिया से ना आया ।
न इहलोक-परलोक, नर्क नहीं स्वर्ग,
ना आदम औ ईव का ही हूँ जाया ।
अस्थान ही है, बस स्थान मेरा,
चिन्ह बना है, अचिन्ह ही मेरा;
न तन ही है मेरा, न मेरी है आत्मा,
मैं तो हूँ उस प्रियतमा की ही आत्मा ।

अंदर-बाहर लगें विरोधी,
लगे सदैव युद्ध सी स्थिति;
भू का बाह्य भाग है रेती,
पर अंतस तो सदा प्रकाशित
हारे बाह्य तो अंतस बोले -
'निज में झाँक, अभेद जान ले ।'

फेन भिन्न है सागर से,
यह फेन ही माने;
सागर की आँख से देखे तो
'मैं सागर ही' जाने ।
मोमबत्तियों को न देख,
बस लौ को देखे जायें,
एक बड़ी लौ ही दिखती,
तेरी-मेरी मिट जाँयें ।

खोजी ! हैं सब खोज व्यर्थ ?
प्रेयसि है साथ तुम्हारे ही,
वो तुम हो, तुम ही हो वही ।

'लाओगे कहाँ से साहस दिल प्रेयसि मिलन का,
जबकि जानते हो उसने, बहुतों को लील लिया ।
मुझे फिक्र ना है इसकी, बस है यही लालसा,
उससे मिलूँ एक हो जाऊँ, दुई न रहे' वह बोला ।

जब आया होश, मैंने की थी प्रतिज्ञा,
सही राह से भटकूँगा ना;
दायें-बायें जहाँ भी देखा,
प्रेयसि सिवा कोई था ना ।
प्रभु से भिन्न न हैं हम, पर
निर्बुद्धि इसे समझे ना,
लोक और परलोक यही है,
किसी और का काम ही ना;
ढूँढ़ा औ महसूस किया -
सब एक है, कहीं दुई ना !

दिल-दर्पण निर्गुण, निराकार है,
पंचतत्व की सीमा में वो ना आए ।
बिंब-प्रतिबिंब वहाँ इक होते,
जल-थल इक-दूजे में मिलतें;
जग-जगदीश अलग ना रहते ।

दिल का सौन्दर्य अमिट होता,
जीवन-जल उससे ही मिलता;
कुछ काम न है तावीजों का,
करिश्मा यह एकत्व से होता,
प्यासे, पयोधर, पानी की या
प्रेमी, प्रेम, प्रेयसि की एकता ।

साकार पुजारी द्वैत मानता,
निराकार अद्वैत;
आत्मिक जग में ना दीवारें,
रहते सब मिल-भेंट ।

ना तन से, ना मन से ही, झगडूं किसीसे,
खुश हूँ सदा, जैसे फूलों का उपवन;
कसम खाई थी, छोडूँगा ना तेरा साथ,
जिस ओर देखूँ, हों प्रेयसि दरशन !
जुदा प्रियतमा से हूँ, ये मानता था,
अब मेरा औ उसका लगे इक तरन्नुम;
देखा ये जाना, करूँ इसकी अनुभूति,
न है द्वैत, अद्वैत की बजती सरगम ।

सारा शरीर हँस रहा है, मेरा ।
एक गुलाब पूरा गुलाब है,
मैं यहाँ हूँ पर, आत्मा मेरी वहाँ है;
उसे यहाँ ले आओ,
मैं भी पूरा बन जाऊँगा ।
तब, जो जोर का ठहाका उट्ठेगा,
वह, मेरे अकेले का ना होगा;
पूरा ही जहाँ इक साथ हंसेगा,
मैं-तू का ना भेद बचेगा ।

बेहोशी में चला था, आया होश तो निज घर दिखा नहीं;
पलटूँ, पहुंचूँ शीघ्र वहाँ,
आनन्द मिलन का पाया नहीं ।
गोया कि हजारों लोग यहाँ है,
उसके जैसा कोई नहीं;
भीड़ बढ़ी पर फिक्रमन्द कोई होगा,
यह तो दिखा नहीं ।
उस अद्वैत समुद्र में ज़्यादा क्या,
दो भी तो होते नहीं;
मोती-मछली का क्या कहिये,
तरंग सिवा वे कुछ भी नहीं ।
सागर की तरंगों के गुम्फों में,
भी तो कोई द्वैत नहीं;
क्या कहूँ दोष-दृष्टि वालों को,
कुछ भी नहीं, कुछ भी तो नहीं ।

उसके प्रकाश के अंदर, मैं ही प्रकाश हूँ ।
वर्षों से, ग्रह-नक्षत्रों के संग,
आत्मिक विकास की सीढ़ी चढ़ते, घूम रहा हूँ ।
बालक समान, उसकी समीपता के ही गर्भ में
पोषण पाता, बार-बार मैं ही जन्मा हूँ ।
इक बार ही जन्मे नर, बाजीगर बहुत बार,

आत्मिक दुःख दूर कर सकूँ जग के,
यह समझ कहा - 'वो एक ही है'
एकत्व सिवा कुछ और दिखे तो
समझो कि बस वो सहायक है ।
जूते की दुकां में चमड़ा ही ना,
लकड़ा भी पाया जाता;
पर, मुख्य नहीं होकर वो केवल,
मददगार ही वहँ होता ।
कपड़े की दुकां में जायें तो,
वहाँ लोहा भी दिख जाता;
पर, वह लोहा, वहाँ तो केवल,
काम नापने के आता ।
मुझ लेखक, शिक्षक की दुकां भी,
है एकत्व की दोस्त मेरे;
उसके सिवा जो और दिखे तो,
भ्रम में ना खाना फेरे ।

मैं अमर्त्य पुष्प हूँ।
तन वस्त्रों का मोल किया है,
कई बार फाड़ा-फेंका है;
रातें कई गुजारीं मठ-आश्रम में,
यायावर के संग घूमा हूँ।
ईर्ष्यालु का दर्द बना हूँ,
बीमार के संग बीमारी;
दरवेश के मृत्यु-कणों को धोता,
बादल, बारिश, वन, उपवन हूँ।
जल, वायु, अग्नि, भू, नभ से न बन,
पैं उन ही से खेल रहा हूँ।
यदि देख पाओ तुम मुझको,
तो चौकन्ने रहना;
नहीं किसी से, कभी भी कहना।
मैं प्रकाश हूँ, उसके प्रकाश के अंदर,
उसके प्रकाश के अंदर;
मैं ही प्रकाश हूँ।

नृत्य

बहती नदिया में नाव चले तो ऐसा दिखता,
चल रहे हैं खेत किनारे के, यह भ्रम होता,
इस दुनियाँ को छोड़ यहीं, जब जाते हम,
भ्रम होता जा रही है दुनियाँ, हैं स्थिर हम ।

जब माँ के गर्भ से बालक जन्मा,
इक साथ घटीं दो घटनाऐं,
माँ की पीड़ा, बच्चे की मुक्ति ।
जब मृत्यु हुई प्राणी की तब फिर,
साथ घटीं दो घटनाऐं,
तन की पीड़ा, आत्मा की मुक्ति ।

भौतिक-आत्मिक दोनों जग में,
मुक्ति ही खुशी ला पाती,
जन्म-मृत्यु की घटना, बस
यह सार तत्त्व दर्शाती ।

भौतिक सुख है चांदी, सोना,
आत्मिक सुख हीरे-मोती,
तन मृत्यु से क्यों घबराये,
मिली जिसे आत्मिक मुक्ति ।

जो बोया था सो काटोगे,
जब प्रिय सम्मुख जाओगे ।
बीज जब तक ना बने पेड़
कैसे उसको जाँचोगे ?
जग है स्वप्न, पर लगे सत्य,
तन मृत्यु पर जानोगे ।
दुःख अश्रु बनें आनन्द-माल,
निज घर में जब जागोगे ।

'दुनियाँ है एक सराय'
मृत्यु होने पर ही जानें हम,
धन-पद यहाँ ही रहता, पर
भाव, याद सम ले जायें हम;
काम-क्रोध जो जाते साथ,
फिर उससे लिपटे रहते हम ।

क्या मृत्यु की तैयारी की है ?
तन खातिर धन बहुत कमाया,
आत्मिक धन की सुधि ली है ?
चमक ऊपरी ले आये पर
अंत्य-गुहा दीखी है ?
टीमटाम दफ़नेगी कब्र में,
बुझे न रोशनी, वो की है ?

'यदि मृत्यु ना होती तो जग खुश ही रहता'
पर, बिन मृत्यु जग वह, कौड़ी का ना रहता ।
ना जिया, ना की अगले जीवन की तैयारी, दुःख सालै
इस चिंता से मृत्यु ही मुक्ति देती, दिख ना पावै ।
असत् जाय सत् रहे, छाछ के बदले दूध मिले,
ना हो मृत्यु तो आत्मा को शांति-आनंद न मिले ।

मृत्यु के दिन इतर ज्ञान,
ना बने सहारा;
हूँ कौन, कहाँ जा रहा न जाना,
कैसी होगी यात्रा ?
'चूर हुई इंद्रियाँ सभी,
आत्मिक प्रकाश ना पाया;'
निज अज्ञान का ज्ञान, हटा देगा
तब सारी बाधा ।

प्रभु है न्यायाधीश और
यह जग है एक कचहरी
हर इक शब्द, कार्य, सोच पर
रहती नजरें उसकी,
जीवनान्त में देगा फैसला,
होगी सज़ा या मुक्ति ।

लो, अब चला गया तन मेरा,
भ्रम रेखा भी गई तुम्हारी ।
दृढ कदमों से चल, तुझ तक मैं आऊँ,
अब न रहेगी तिलभर की भी दूरी ।

हम मृत्यु सामने देख डरें,
पर सूफी हँसता रहता;
पड़े प्रहार सीपी पर चाहे,
मोती का कुछ न बिगड़ता ।
जब उसे दिखा नन्दन कानन,
पथ से क्यों, कैसे डरता ?

मृत्यु खोलेगी रहस्य समय आने पर,
पथ प्रकाश का या तम का पाओगे;
कर लिया अहम् को चूर तो तत्क्षण
ज्योति पुंज बन जाओगे ।

मेरी मृत्यु पर जब शवयात्रा निकलेगी,
जग से था मुझको लगाव, ये सोच न करना गलती।
रूको रूको ना चिल्लाना उस वक्त अरे,
प्रेयसि से एकाकार होऊँगा उस क्षण रे ।
अलविदा भी ना कहना मुझको कोई भी,
वहाँ राह देखते होंगे स्वर्ग के वासी ।
मुझको मिटता देखो तब, यही याद रख लेना,
डूब रहा चंदा-सूरज सम, है ये ऊपर उठना ।
जो सूर्यास्त यहाँ है, सूर्योदय है और कहीं पर,
मिट्टी में तन मिलता, आत्मा उठती और गगन पर ।
फिंका हुआ दाना गेहूँ का, बनकर पेड़ उगा करता,
यह रहस्य जानें तो स्वागत सभी करें मृत्यु का ।
थोड़ा भी जो कहें तो ज्ञानी, पूर्ण समझ लेता है,
समझायें कितना भी, मूढ़ पर, कण न समझ पाता है।
कब होगा वह, कब होगा वह, वह कब होगा,
मय होगी वहाँ, मय होगी वहाँ, मय वहाँ ही होगी ।
मैं वहाँ होऊँगा, वहाँ होऊँगा, वहाँ होऊँगा
वो होगी वहाँ, वो होगी वहाँ, वो वहाँ ही होगी।
कब होगा यह -
मैं औ मय होवेंगे वहाँ, प्रेमिका भी होगी ।